क्रम स.	विषयसूची	प्र.स.
१	बरसाने की रंगीली होली (साध्वी चंद्रमुखीजी)	३
२	ब्रजरस-सारामृत 'होलीलीलागान' (साध्वी माधुरीजी)	६
३	श्रीमद्भागवत-रसामृत (व्यासाचार्या साध्वी मुरलिका जी)	९
४	श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ (व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी)	११
५	भागवत-धर्म (प.रामजीलालजी शास्त्री)	१२
६	श्रीमद्भगवद्गीता (साध्वी पद्माक्षीजी)	१६
७	श्रीभगवन्नाम-महिमा (साध्वी ब्रजबालाजी)	१९
८	धाम-महिमा (संत श्री ध्रुवदासजी महाराज)	२१
९	श्रीराधासुधानिधि (साध्वी सुगीताजी)	२३
१०	गोपी-गीत (साध्वी देवश्रीजी)	२६
११	जनाबाई की भक्ति-शक्ति (साध्वी गौरीजी)	२८
१२	DHAAM-NISHTHAA (ravi monga ji)	३१
१३	मानमंदिर की गतिविधियाँ	३२

छबीली नागरी हो धन तेरो परम सुहाग ।।
तेरेइ रंग रंग्यौ मन मोहन मानत है बड़भाग ।
आज फबी होरी प्रीतम संग लखियत है अनुराग ।
श्री रूपलाल हित रूप छके दृग उपमा को नहिं लाग ।

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो |

संरक्षक – श्री राधा मान बिहारी लाल
प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री,
मान मंदिर सेवा संस्थान
गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
Website : www.maanmandir.org
E-mail : ms@maanmandir.org
Tel. : 9927338666, 9837679558

जिसको विवेक हो जाता है, वह संसार के समस्त पदार्थों तथा भोगों का त्याग करके एक-एक श्वास भगवान् में लगाता है |

"स्वास-स्वास पे कृष्ण रट,वृथा स्वास मत खोय
| न जाने या स्वास को, आवन होय न होय ||"

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

प्रकाशकीय

ब्रज-वसुंधरा के विविध रंगों में होली का रंग भी जो सलोना उल्लास है, जिसके समक्ष स्वर्गानन्द भी फीका प्रतीत होता है, इसी से नागरीदासजी की लेखनी भी विवश हो गयी यह लिखने को –

स्वर्ग वैकुण्ठ में होरी जो नाहिं तो कोरी कहा लै करै ठकुराई ।

ऋतुराज बसंत का आगमन ब्रज में होली के अनुराग, हास-परिहास, उल्लास के रमणीक आनंद के साथ होता है । घर-घर रस रंग का महकता आह्लाद उत्सव रूप परिलक्षित होता है । समस्त लोक मर्यादाएं एक झटके के साथ खण्ड-खण्ड होती दिखाई देती हैं । प्रेमानुराग की उमड़ती-घुमड़ती सरिता सारी वर्जनाओं को तोड़ देती है । आबाल-वृद्ध सभी मस्ती में ढोल नगाड़ों के साथ थिरकते दिखाई देते हैं । होली का यह उत्सव ब्रज में चालीस दिन पर्यन्त चलता है और वह भी सम्पूर्ण जगत से भिन्न । कहते हैं कि '**जग होरी ब्रज होरा, कैसा है यह देश निगोड़ा ।**' ब्रज के भिन्न-भिन्न गाँवों में भिन्न-भिन्न भाँति की होली के दर्शन होते हैं । बरसाना की लठामार तो जाव-बठैन का होरंगा अरहर के झामों की मार से तथा दाऊ जी में कोड़ों की मार, इसी तरह अन्य गाँवों में होली का हुड़दंग प्रसिद्धि की चरम पर होता है । यह अद्‌भुत रस यद्यपि जन सामान्य के लिए अत्यन्ताकर्षण का केंद्र होता है फिर भी देव दुर्लभ है –

जो रस बरस रह्यो बरसाने, सो रस तीन लोक में नाँय ।

इस रस की झांकी आप सभी को हो सके, इसी आशा से **मानमंदिर बरसाना पत्रिका** का यह अंक होली-विशेषांक के रूप में प्रकाशित है ।

राधाकांत शास्त्री
मानमंदिर, बरसाना (उ.प्र.)

बरसाने की रंगीली होली

रंगीली होली के महोत्सव में श्रीबाबामहाराज द्वारा रसिया-गान (२१/३/२०१३)

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी चन्द्रमुखीजी, मानमंदिर, बरसाना)

सम्पूर्ण जगत में रंग भरी होली का प्रसार बरसाने से ही हुआ, ऐसा क्यों हुआ तो इसके बारे में वृन्दावन के प्रमुख रसिक संत हरिराम व्यासजी ने लिखा है –

लागी रट राधा राधा नाम ।
ढूँढ फिरी वृन्दावन सगरौ नन्द डिठौना श्याम ।।

सारे ब्रज में मैंने श्यामसुन्दर को ढूँढ़ा लेकिन वह कहीं नहीं मिले, वृन्दावन में भी नहीं मिले, फिर कहाँ मिले?

कै मोहन कै खोर साँकरी कै मोहन नन्दगाँव ।।

श्यामसुंदर बरसाने की खोर साँकरी, गह्वरवन या नन्दगाँव में मिलते हैं, वृन्दावन में भी वे नहीं हैं ।

व्यासदास की जीवन राधे धनि बरसानो गाँव ।।

व्यासजी कह रहे हैं कि मेरी जीवन तो श्रीराधा हैं जो बरसाने में रहती हैं । इसलिए सम्पूर्ण जगत में रंग भरी होली का प्रारम्भ बरसाने से ही हुआ । श्यामसुंदर बरसाने में ही रहते हैं –

अकस्मात्कस्याश्चिचन्नववसनमाकर्षति परां
मुरल्या धम्मिले स्पृशति कुरूतेन्याकरधृतिम्।
पतन्नित्यं राधापदकमलमूले व्रजपुरे
तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महालंपटमणिः॥

(श्रीराधासुधानिधि - २३२)

श्यामसुंदर किसी ब्रजांगना की चूनरी खींचते हैं, किसी के जूड़े को अपनी वंशी से खींचते हैं, **"पतन्नित्यं राधापदकमलमूले व्रजपुरे"** राधारानी का जो पदकमल है, उसका मूल बरसाना है । **तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महालंपटमणिः ॥** श्रीकृष्ण नित्य यहीं बरसाने में रहते हैं और कहीं नहीं जाते । रसिकों ने वृन्दावन तक को मना कर दिया । आज भी देखो तो बरसाने की हर गली में होली हो रही है । बरसाने की होली को रंगीली होली कहते हैं ।

होरी खेलत श्याम मोते झूम झूम ।
लिये ग्वाल बाल आज नन्द के कुमार लाल ।।

रंगीली होली के दिन श्यामसुन्दर बरसाने आये । **'खेलन को आये फाग चित्त रस भीने हैं ।'** श्यामसुन्दर नन्दगाँव से चल पड़े, ग्वालबालों से बोले – 'चलो, रंगीली होली पर बरसाने धावा बोलें ।'

'भर के उमंग अंग-अंग में अनंग रंग ।' सबके नेत्र रस से झूम रहे हैं जैसे हिरन के नेत्र होते हैं ।

मृग के से छौना नैना चंचल नवीने हैं । झूम झूम चलत मत्त गजराज शावक मानो ।

ऐसा लग रहा है मानो मस्त हाथी के बच्चे आ रहे हैं ।

'नूपुर औ किंकिणी जू घंटा नाद कीन्हे हैं ।
रस बरसाने सरसाने बरसाने आज ।।'

आज तो बरसाने में रस बरसेगा ।

'गोरी किशोरी रस होरी रंग लीन्हे हैं ।'

नंदगाँव से श्यामसुन्दर ग्वालों के साथ चले, नगाड़ा, ढप आदि वाद्य बजाते हुए, ऐसा लग रहा है जैसे कोई फौज चढ़ाई करने आ रही है ।

'ढप बाज्यो रे छैल मतवारे को ।
ढप की धुनन मेरो सब घर हाल्यो,
हारयो खम्ब तिवारे को ।।'

श्यामसुन्दर और उनके सखाओं के द्वारा बजाये जा रहे वाद्य यंत्रों की जोरदार गर्जना से बरसाने के सब बड़े-बड़े भवन हिलने लगे, ग्वालबालों ने इतनी जोर से नगाड़े बजाये ।

बाजत नगारे निशाने ब्रजराज जू के ।
धौंसा की चोटन अधर सब कीन्हे हैं ।
नगाड़ों पर ऐसी चोट पड़ रही है कि सारा बरसाना हिल रहा है –
ढप की धुनन मेरो सब घर हाल्यो ।
हाल्यो है खम्ब तिवारे को, ढप बाज्यो है छैल मतवारे को ।।
घर औ तिवारे खम्ब हाले हैं हवेलिन के ।
गैल औ गिरारे हाले चित्त जुवतिने हैं ।
बरसाने के रास्ते हिल गये, बरसाने की सभी युवतियाँ हिल गयीं यह देखकर कि नन्दलाल की फौज आ गयी है । इधर से ग्वालबालों की फौज आयी, सारा ब्रज हिल गया कि ग्वालबालों की फौज बरसाने में चढ़ाई कर रही है । नंदगाँव के ये रंगीले हुरियारे बरसाने जा रहे हैं और बरसाने में क्या हुआ? **सुनत उमंगन में निकस चलीं टोल टोल ।** नंदगाँव के इन हुरियारों से होली खेलने बरसाने की ब्रजयुवतियाँ इस प्रकार चलीं मानो बिजलियाँ-सी चमकती जा रही हैं ।
रूप का प्रकाश किये झुण्ड दामिनी ने हैं ।
ब्रज के गाँवों राल-भदार में झण्डी की होली होती है । लठामार होली बरसाने की होती है, जाव–बठैन में जामे की होरी होती है । राल-भदार में गोपी अथवा ग्वाल में जो झण्डी जीत जाता है, वही विजयी होता है । दाऊ जी के हुरंगा में ग्वालों की कोड़ों से पिटाई होती है, बरसाने में लट्ठों से पिटाई होती है । दाऊजी में गोपियाँ ग्वालबालों के वस्त्रों को फाड़कर, उनका कोड़ा बनाकर उन्हे पीटती हैं । राल-भदार में गोपियाँ झण्डी लेकर होली खेलने निकलती हैं । झण्डी हारना नहीं है, जीतना है ।
फहरात ध्वजा और पताका दोऊ टोलन पे ।।
जैसे सेनायें लड़ती हैं उसी प्रकार गोपी-ग्वाल के दोनों दलों में सैकड़ो झण्डियाँ हैं, हर गोपी के हाथ में झण्डी है । झण्डी लेकर वे लड़ने के लिए चली जा रही हैं । **फहरात गीतन की घोरन प्रवीन है ।** गोपियाँ गीत गाती जा रही हैं कि आज रंगीली है –
'आज रंगीली होरी रे रसिया ।'
बाजे बज रहे हैं - नगाड़ा, ढप, सारंगी आदि वाद्य यंत्र सब गोपियों के हाथों में हैं ।
किन्नरीन फिरी झल्लरी झनक रही ।
बाँसुरी, मृदंग, ढप, बाज रही बीनें हैं ।।
उधर से ग्वालबाल चांचर, धमार आदि होरी के गीतों को गाते आ रहे हैं और गोपियाँ गारी गा रही हैं ।
गाय रहे चांचर धमारन के गीत कोऊ ।
गोपियाँ गारी गा रही हैं –
'गाय रही गारी मधुर सुर भीने हैं ।'
गोपियाँ गारी में श्यामसुंदर को उलाहना दे रही हैं – **'तेरी माँ जसोदारानी, काऊ कारे ते बतरानी ।।'**
तुम इसीलिए तो काले हो क्योंकि तुम्हारी मैया यशोदा ने किसी काले से बात कर ली थी । ग्वालबाल जब बरसाने चले तो आपस में बोले कि वहाँ लट्ठ पड़ेगी इसलिए शीश में ढाल बाँध लो, पाग बाँध लो, वहाँ हम लोग पिटेंगे लेकिन लड़ाई हारना नहीं है ।
शीश पे बँधी है पाग, ग्वारिया ग्वारन के गोपिन सिर चूनरी, सुगंध इत्र भीने हैं ।।
गोपियाँ श्रृंगार करके चल रही हैं और ग्वालबाल –
'बड़े-बड़े कठुला सुनहले हैं गोप धरे,
गोरिन के हारन में चमकत नगीने हैं ।
किलक-किलक के कुतूहल करत सब,
हाव भाव जारिन मदन मन झीने हैं ।।'
कामदेव का मद नष्ट हो गया, ऐसी गोपियाँ और ग्वालबाल हैं । दोनों दल टकराये, इधर से ग्वाल, उधर से गोपी और होली की लड़ाई शुरू हो गयी । कैसे शुरू हुई? दोनों दल गुलाल-अबीर की पोटें भर-भर के उड़ा रहे हैं, मार रहे हैं जैसे बम का गोला फट रहा है । **'दूर ही ते पोटे उड़ाय रहे**

मार-मार ।।' इतनी पोटें उड़ रही हैं कि सूर्य ने आँख बन्द कर लिया अर्थात् सूर्य का दिखना बन्द हो गया ।

दिन में डरप दृग मूँदे रवि ने हैं ।।

कोई पोट चली हैं हरे-हरे गुलालन की कोई पीत,

कोइ लाल लाल कर दीने हैं ।।

किसी ने पोट मारा तो आसमान लाल हो गया, किसी ने पोट मारा तो हरा रंग फैल गया ।

'कोई कोई बूकाकी बन्दन अबीरन की,

देख-देख सावन की घटा जू लजीने हैं ।'

गोपियों ने अबीर-गुलाल से आकाश को ऐसा रंग दिया कि सावन की घटा भी शरमा गयी कि आज बरसाने में क्या हो रहा है? ये है रंगीली होली, जिसको देखकर सावन भी लज्जित हो गया और अंत में –

'भीजे गोप-गोपी औ डगर-बगर भीजे ।

रंग गयी यमुना और रंग सब भीने हैं ।।'

इतने भीजे कि –

'पटुका और पाग भीजे, भीजी सब चूनरीहू,

अंगिया और लंहगा अतरौटा रंग भीने हैं ।।

ऊपर से नीचे तक सब गोपियाँ भीग गयीं । गोपियाँ आपस में बोलीं - जीतना है, हार के नहीं चलना है ।

बोलीं ब्रजनारी जू, सावधान है के रहो ।

जूथ-जूथ ग्वाल संग मोटन प्रवीने हैं ।

ऐसे घेर रहे मानो कमलीन देख-देख ।

मंडराय झुण्ड घेरि लियो रमावलीने हैं ।।

समस्त गोपिकाओं ने विचार किया कि अब लड़ाई कैसे जीतें? **'पाँच सात सखी गोप वेश धर जाय मिली ।।'** अच्छी, पुष्ट, मोटी गोपियों ने ग्वाल-बालों का वेष बनाया और ऐसा वेष बनाया कि उन्हें कोई पहचान नहीं पाया । **गोप टोल माँहि कोऊ नेक न पछीने हैं ।।** उन्होंने लड़ाई कैसे जीती? ग्वाल बनी गोपियाँ कृष्ण से जाकर बोलीं- अरे कान्हा! झण्डी जो छीनता है वही जीतता है, चल मैं तुझे झण्डी के पास पहुँचा दूँ । **जाय कही कृष्ण सुन चल झंडी बेग छीन ।।** जैसे चक्रव्यूह में अभिमन्यु को रास्ता मालूम था, उसी ने चक्रव्यूह का भेदन किया, उसी प्रकार गोपियाँ भी लड़ती हैं तो चक्रव्यूह की तरह कि कृष्ण झण्डी तक नहीं पहुँच पायें । गोपियाँ इस तरह से खड़ी होती हैं कि कृष्ण झण्डी **दीन्हे हैं ।।'** गोपियाँ बोलीं- कन्हैया! रास्ता हम बतायेंगी, तू चल । कृष्ण चल पड़े और गोपियाँ उन्हें उस रास्ते से ले गयीं जिस रास्ते को कृष्ण जानते नहीं थे । **'तनक ही लिवाय दूर हँसन लगीं बाल सब ।।'** जब गोपियों ने देख लिया कि कृष्ण अब अपने सखाओं से दूर आ गये तो सब हा-हा करके जोर से हँसने लगीं कि अब तो इसको पकड़ लो । **'पकड़े बलवीर वृन्द-वृन्द कामिनी ने है ।'** गोपियों ने कृष्ण को पकड़ लिया । कृष्ण ने कहा– ये क्या है? गोपियाँ बोलीं– अरे जीतने आये हो, अब जीतो । **'लहँगा पहराय सखी साँवरी नचाय देख ।।'** गोपियाँ कृष्ण से बोलीं– अब तुमको नाचना पड़ेगा, नहीं तो हम तुम्हें सैकड़ों गुलचा मारेंगी । तुम्हारे सखाओं की भी पिटाई होगी इसलिए जल्दी नाचो । कृष्ण नाचने लग गये और अपने सखाओं से बोले– अरे भाई, जल्दी नाच लो नहीं तो सैकड़ों घूँसे लगेंगे । **'देख मुस्काय रहीं राधिका लजीली हैं ।।'** राधारानी कृष्ण को नाचते देखकर उनको लज्जा से देख रही हैं । यही है रंगीली होली ।

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह । दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ (भा. ७/६/१)

'कौमार आचरेत्प्राज्ञो' कुमार अवस्था से ही भक्ति करनी चाहिए। कुमार अवस्था में काम, क्रोध, आदि छल-कपट नहीं होते।

ब्रजरस-सारामृत 'होली-लीलागान'

(संध्याकालीन आराधना के उपरान्त श्रीबाबाजी द्वारा कथित ब्रज-होली की महिमा)

(२२-३१/१/२०१८)

संकलनकर्त्री / लेखिका- साध्वी माधुरीजी, मानमंदिर, बरसाना

फाल्गुन माह में मान मन्दिर के संकीर्तन भवन 'रसमण्डप' में सायंकालीन आराधना में जो होली के गीतों (रसिया) का गान होता है, यह केवल होली का रसिया ही नहीं है, ये सब लीलायें हैं; इन लीलाओं को गा-गाकर ब्रह्मा, शंकर आदि वरिष्ठ देव भी पवित्र होते हैं क्योंकि ये रसमयी लीलायें हैं । ये केवल हुल्लड़ नहीं है । ठाकुर-श्रीजी ने ब्रज में जो रसमय खेल खेले हैं, वे आज तक चल रहे हैं । इनको हर आदमी नहीं समझ सकता । कर्दम ऋषि ने कहा है –

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च
हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधु
पीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ (भागवत ३/२१/१७)

यह संसार पशु है, इसको छोड़ने के बाद ही मनुष्य भगवान् के चरणकमलों को अपनाता है । भक्तजन आपस में मिलकर भगवान् का गुणगान करते हैं, भगवान् की रसीली लीलायें गाते हैं और वे रसमय गीत इतने मीठे होते हैं कि उनमें सीधु अर्थात् मदिरा की तरह मादकता होती है, लेकिन मदिरा तो मार डालती है परन्तु भगवान् का गुणगान मार डालने वाली मदिरा नहीं है अपितु भगवान् के चरित्र तो अमृतमय हैं, उसी से देह-धर्म का निर्वाह हो जाता है । सच्चे वैष्णव भक्त कोई कमाई नहीं करते हैं । कई लाख लोग जैसे – साधु-संत और पुजारी मंदिर में रहते हैं लेकिन इनका जीवन-निर्वाह हो जाता है । इनका देह-धर्म भी बिना धन कमाए निभ रहा है । यह भगवान् की लीलाओं और चरित्र की विशेषता है कि जिसके गान से देह-धर्म भी पूरा हो जाता है । इसलिए भगवान् के चरित्रों और उनकी लीलाओं को श्रद्धा के साथ गाना चाहिए । हमलोग जो लीलाएं गातें हैं, ये प्राकृत लीलाएं नहीं हैं, गँवारों की लीला नहीं है । सच में भगवान् ने ऐसी मधुर लीला की है ।

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(भागवत १०/३३/३७)

ये ऐसी मीठी लीलाएं हैं कि इनको गाकर एक मूढ़ से मूढ़ प्राणी का मन भी खिंच जाएगा और वह रस लेने लग जाएगा । इसलिए भगवान् ने कृपापूर्वक मनुष्य देह धारण करके ऐसी लीलाएं की जिनको सुनने से सहज में मन उनमें लग जाएगा, यह उनकी विशेष कृपा है । कहीं वह माखन चोरी करते हैं, कहीं होली खेलते हैं, कहीं छेड़छाड़ करते हैं, ये सब लीलाएं कृष्ण ने इसीलिए किया ताकि हम लोगों का मन किसी तरह उनमें खिंच जाए । जैसे - होली का एक गीत है – **दरसन दै निकस अटा में ते ।** यह रसिया फागुन में होरी के समय नंदगांव वाले बरसाने में आकर श्रीजी के दर्शन हेतु गाते हैं ।

लट सरकाय दरस दै प्यारी,
जैसे निकस्यो है चन्द्र घटा में ते ।

श्यामसुन्दर श्रीजी से प्रार्थना करते हैं कि जैसे चन्द्रमा घटा में से निकलता है, वैसे ही हे राधे! लटों को अपने मुख से हटाकर मुझे भलीभांति दर्शन दो । इसी प्रकार एक अन्य होली लीला में गोपी नंदनंदन से कहती है -

होरी में काहे भागे, अरे लगवाय ले कजरा नन्द जू के

गोविन्द भाग रहे हैं क्योंकि गोपी उनके मुख पर काजल ऐसा लगाएगी जैसे गाढ़ी लीक, जिससे उनका सारा मुँह बिगड़ जाएगा । इसलिए वह भाग रहे हैं । गोपी कहती है – अरे होरी है, लाला! भागै काहे को, काजल लगवाय ले ।

काजर ऐसो लगाऊँ जैसे तू बन-ठन के डोले है ।

ऐसी सुन्दर होरी लीला का गायन श्रीकृष्ण-कृपा से ही होता है । ब्रज की होली त्रिभुवन में विख्यात है, यह साक्षात् नंदलाल ने खेली है और यही है – 'ब्रज-रस' । इसी ब्रजरस को जानने के लिए, देखने के लिए, रसास्वादन करने हेतु ब्रह्मा, शंकर आदि देव ब्रज में आते हैं ।

ब्रज के गाँवों में विविध प्रकार की होलियाँ होती हैं, ये ब्रज की शोभा है, ये केवल ब्रज में ही होती है, ब्रज के बाहर यह रस नहीं है । श्रृंगार रस ब्रजभूमि में बह रहा है, उसी रस को ठाकुर जी ने, गोपियों ने बहाया है; इसलिए श्रृंगार रस युक्त होली की लीलाओं को प्रेम से, श्रद्धा के साथ गाना चाहिए ।

एक होरी लीला में गोपीजन चुनौती देती हैं ठाकुर जी को कि आज होली है -

होरी हो ब्रजराज दुलारे ।
बहुत दिना ते तुम मनमोहन फाग ही फाग पुकारे,
आज देखियो खेल फाग को रंग की उड़त फुहारें ।।
निपट अनीति उठाई तुमने, रोकत गैल गिरारे ।
नारायण अब खबर पड़ेगी, नैक तो निकस आ द्वारे ।।

ऐसी होरी-लीला ब्रज में ही होती है, ब्रज वसुंधरा के बाहर विश्व ब्रह्माण्ड में अन्यत्र कहीं नहीं होती है ।

दाऊ जी की होली में कोड़ों से पीटने की प्रथा है, गोपियाँ कृष्ण-बलराम के वस्त्र फाड़कर, उन्हे निर्वस्त्र करके उन्ही के फटे वस्त्रों का कोड़ा बनाकर उनको पीटती हैं । बरसाने में तो कृष्ण-बलराम ब्रज गोपिकाओं द्वारा लट्ठ से पिटते हैं और दाऊ जी में कोड़ों से ।

ब्रज की होली के बारे में प्रसिद्ध यवन संत रसखान जी ने इस पद की रचना की है –

कैसा है ये देश निगोड़ा, जग होरी ब्रज होरा ।
हौं जमुना जल भरन जात ही, देख रूप मेरा गोरा ।
मोते कहे तनक चल कुंजन, नैक-नैक से छोरा ।
का बूढ़े का लोग-लुगाई, एक ते एक ठिठोरा ।
कै रसखान सिखाय सखन को, सब मेरा अंग टटोला

ये ब्रज की होरी है । इसमें कोई मर्यादा नहीं है । श्रीबाबामहाराज जब ब्रज में आये तो उन्होंने नन्दगाँव-बरसाने की लठामार होली देखी, इसमें कोई मर्यादा नहीं होती है । गोपियाँ इतनी तीव्र गति से लट्ठों का प्रहार करती थीं कि ग्वालबालों के सिर में हल्की सी चोट लग जाती थी, ऐसी स्थिति में वे अत्यंत श्रद्धापूर्वक वहीं बरसाने की रंगीली गली की मिट्टी(ब्रज रज) को उठाकर सिर में लगा लेते थे और सिर की चोट ठीक हो जाती थी । इसी परम्परा के साथ आज भी बरसाने-नंदगाँव की होली खेली जाती है ।

ब्रज के हर गाँव में मर्यादा रहित होली होती है । दाऊजी में गोपियाँ ग्वालबालों के वस्त्रों को फाड़कर उनका कोड़ा बनाकर पीटती हैं । ब्रजग्रामों यथा मुखराई, आन्यौर, जतीपुरा, जाव-बठैन, राल-भदार, फालैन आदि की प्रसिद्ध होली भी श्रीबाबा महाराज ने देखी । इनमें कहीं कोई मर्यादा नहीं होती है । ऐसी होली ब्रज में अखिल ब्रह्माण्ड अधीश्वर श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों के साथ खेली ।

शेष महेश सुरेश आदिहू अज अजहू पछताय ।
सो रस रमा तनक नहीं चाख्यो जदपि पलोटत पाँय

यह ब्रज की होली का रस लक्ष्मीजी को भी नहीं मिला, जबकि वह दिन-रात श्रीहरि की चरण सेवा करती हैं लेकिन

सो रस रमा तनक नहिं चाख्यो जदपि पलोटत पांय
एहि रस मगन रहत निसिवासर नन्ददास बलि जाय
श्री वृषभानु सुता पद अम्बुज जिनके सदा सहाय ।।

ये होरी ब्रज में ही है और यहाँ न कोई मर्यादा है न कोई किसी प्रकार की रोक है । ऐसी होरी जो आप पदों में सुनते हैं, गाते हैं, ये ब्रज में ही है और कहीं नहीं है । ब्रज की होली का रस लक्ष्मीजी को नहीं मिला जबकि वह ऐश्वर्य की देवी हैं । देवियों के लिए यह ब्रज होली का रस नहीं है, ये तो केवल ब्रज के गोपी-ग्वालों के लिए है और ब्रज के गाँव-गाँव में है ।

होली-लीला में एक बात समझनी चाहिए कि ग्वालबालों के साथ तो ठाकुर जी एक-दो बार हारते हैं लेकिन होरी में गोपियों से बार-बार हारते हैं और हारने का उन्हें दंड भोगना पड़ता है जैसे

फगुआ दिए बिन जान न पइहौ कोटि करो चतुराई ।
ब्रज में हरि होरी मचाई ।।

गोपियों ने श्यामसुंदर को पकड़ लिया और बोलीं कि लाला, बिना फगुआ दिए तुम नहीं जाओगे चाहे कितनी ही चतुराई करो । फगुआ में चूनरी, आभूषण आदि गहने दंड में दिए जाते हैं । जब ठाकुर जी हार जाते हैं तो उन्हें फगुवा में ये सब देना पड़ता है । ये होरी लीला की विशेषता है । होरी लीला में श्यामसुंदर बार-बार हारते हैं और बार-बार फगुवा देते हैं और इसी में उनकी बड़ाई है । जितना दंड का जुर्माना देंगे उतना ही बढ़िया है । इसलिए होरी लीला बड़ी मधुर लीला है । होरी लीला के बारे में लिखा है **शेष महेश सुरेश आदिहु अज अजहू पछताय ।**

शेषजी, महादेवजी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि देव आज तक पछताते हैं कि हम ब्रज में उत्पन्न नहीं हुए अन्यथा हम भी होली खेलते । ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी तथा अन्य देवियों को यह सुख प्राप्त नहीं हो सका जो ब्रज गोपिकाओं को प्राप्त हुआ, वे बार-बार कृष्ण को पकड़कर दण्ड देती हैं और उन्हें पराजित करती हैं तथा उनसे पराजित होकर श्यामसुन्दर दण्ड का शुल्क देते हैं । यह होली का रस लक्ष्मीजी को नहीं मिला, महादेवजी को नहीं मिला, ब्रह्माजी को नहीं मिला, ये सब पछता रहे हैं तब फिर यह रस किसको मिलता है?

श्री वृषभानुसुता पद अम्बुज जिनके सदा सहाय ।
यहि रस मगन रहत निसि वासर नंददास बलि जाय ।।

राधारानी की जिसके ऊपर कृपा हो जाती है उसको यह रस मिलता है, बाकी लोगों को नहीं मिलेगा चाहे ब्रह्मा बन जाओ, चाहे महादेव बन जाओ चाहे लक्ष्मी बन जाओ, यह रस तो केवल राधारानी की कृपा से ही मिलता है । नंददास जी कहते हैं कि उनकी बलिहारी है जो इस होली के रस में अहर्निश डूबे रहते हैं । इस ब्रज की होली के रस में सभी मर्यादाएं टूट जाती हैं । भगवान् स्वयं ब्रज में होली खेलते हैं और सभी मर्यादाओं को तोड़ देते हैं इसलिए ब्रज की होली का रस ब्रज में ही है, संसार में कहीं और नहीं है ।

.....

भगवान् की कृपा के दो आयाम अर्थात् दो रूप होते हैं । एक तो जब भगवान् भक्त के भक्ति विरोधी तत्वों को नष्ट करते हैं, वह है 'प्रशम' तथा दूसरा रूप यह है कि 'प्रशम' के बाद भक्त को अपनी कृपा का पात्र बना लेते है, ये है 'प्रसाद' । प्रशम और प्रसाद इन दो शब्दों का प्रयोग श्रीमद्भागवत अंतर्गत रासपंचाध्यायी के प्रथम अध्याय के अंतिम श्लोक में हुआ है।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः । प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।। (भा.१०/२९/४८)

रास लीला के प्रारंभ में ब्रजगोपियों के सौभाग्य मद और मान को देखकर उसके प्रशम' (दूर करना), तदन्तर उन पर 'प्रसाद' (कृपा करना) करने के लिए भगवान् केशव उनके बीच से ही अंतर्धान हो गये ।

श्रीमद्भागवत-रसामृत

व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवत-कथा' (९/१/२०१४)

भागवत-माहात्म्य के दूसरे श्लोक में शुकदेवजी महाराज को प्रणाम किया गया है । ऐसे महापुरुष हैं शुकदेवजी जो माता के गर्भ से निकलते ही संन्यास लेने के लिए भागे और जैसे ही संन्यास के लिए दौड़े हैं तो "**पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।**" व्यासजी उनके पीछे दौड़े – 'पुत्र-पुत्र' कहकर पुकार रहे हैं और वहाँ जितने भी जंगल के वृक्ष हैं, वे सब वृक्ष 'शुकोऽहं-शुकोऽहं' कहकर व्यासजी को उत्तर दे रहे हैं कि मैं ही शुकदेव हूँ, मैं ही शुकस्वरूप हूँ । शुकदेव जी की आत्मा और उन वृक्षों की आत्मा में कोई भेद नहीं रहा क्योंकि यदि सर्वत्र कोई जीव एक ही आत्मतत्त्व का दर्शन कर ले "**आत्मवत्सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।**" ठाकुरजी ने कहा कि जैसे अपने भीतर आत्मा है, उसी आत्मा का दर्शन यदि सर्वत्र जीव करने लग जाए तो वही सबसे बड़ा ज्ञानी है; ये सबसे बड़ी उपलब्धि है, यही सबसे बड़ा ज्ञान है, इससे बड़ा ज्ञान और कोई हो नहीं सकता- '**आत्मवत्सर्वभूतेषु ।**' व्यासजी महाराज समझ नहीं पाए, ये सब वृक्ष कह रहे हैं - **शुकोऽहं-शुकोऽहं**, अब मैं किसको बेटा मानूं, ये सब वृक्ष तो अपने आपको शुकस्वरूप कह रहे हैं, भागने वाले को बेटा मानूँ या ये जो अचर योनि में वृक्ष खड़े हैं, शुकोऽहं-शुकोऽहं कह कर बुला रहे हैं, मैं इनको बेटा मानूँ । ऐसे शुकदेवजी महाराज को प्रणाम किया गया । आगे सूतजी महाराज और शौनकजी का पावन संवाद प्रारम्भ हुआ है श्रीमद्भागवतजी में । शौनकजी महाराज के साथ ८८ हजार ऋषियों का विशाल ऋषि-समाज है, ये सभी ऋषिगण प्रयाग से होते हुए आ रहे हैं । प्रयाग तीर्थराज है, प्रयाग में बड़ी भीड़-भाड़ होती है अतः ऋषियों ने विचार किया कि यहाँ तो भजन- साधन हो नहीं पायेगा । इसलिए किसी एकांत स्थान में चलना चाहिए । प्रयाग से सभी ऋषिगण आये हैं नैमिषारण्य क्षेत्र में, शौनकजी महाराज सबके मुखिया हैं, वह कथा-श्रवण हेतु आगे बैठे हैं । इन समस्त ऋषियों का एक-सा तो मन है, एक-सी भजन-पद्धति है, एक-सी सबकी रहनी है, एक-सी चित्तवृत्ति है, इसलिए कथा-श्रवण में वहाँ किसी प्रकार का कोई व्यवधान नहीं हो रहा है । शौनकजी महाराज ने सूत जी से बड़ी विनम्रता पूर्वक प्रार्थना की – हे प्रभो! "**अज्ञानध्वान्त विध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ।**" आपको जो ज्ञान प्राप्त है, यह अज्ञान रूपी अन्धकार का सर्वथा नाश कर देने वाला है और यह ज्ञान करोड़ों-करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान है - '**कोटिसूर्यसमप्रभ**' । शौनकजी महाराज ने पहले सूतजी की प्रशंसा की है क्योंकि कथा में यह एक नियम है कि श्रोता पहले वक्ता की प्रशंसा करे, वक्ता को प्रसन्न करे, उसके बाद अपनी जिज्ञासा को सामने रखे और फिर वक्ता के द्वारा उसकी वाणी से अनुग्रहीत हो । इसीलिए शौनकजी ने पहले सूतजी महाराज की स्तुति की है, उनकी बड़ी प्रशंसा की और फिर अपनी जिज्ञासा रखी । वह कैसी जिज्ञासा थी, वह सार्वभौम कल्याण की जिज्ञासा थी । एक होता है आत्मकल्याण और दूसरा होता है सार्वभौम कल्याण । अपने कल्याण की तो हर व्यक्ति चेष्टा कर सकता है लेकिन यहाँ शौनकजी महाराज अपने कल्याण का नहीं अपितु सम्पूर्ण जगत के कल्याण का प्रश्न कर रहे हैं ।

शौनक जी महाराज ने प्रश्न किया –

मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ।

वैष्णव लोग माया-मोह से कैसे पीछा छुड़ाते हैं? हे प्रभो! कलिकाल में अधिकतर लोग आसुरी स्वभाव, आसुरी-वृत्ति को प्राप्त हो गए हैं, अतः संसारी लोग असद् वृत्तियों से कैसे छूटें, इसका क्या उपाय है? जो अति शीघ्र भगवान् की प्राप्ति करा दे, ऐसा सबसे सरल साधन बतायें? शौनकजी महाराज के प्रश्नों को सुनकर सूतजी ने कहा कि हे शौनकजी! आपने जो प्रश्न किया है, आप ध्यानपूर्वक इसका उत्तर श्रवण करें -'**श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्** ।' कलिकाल में जीवमात्र की चित्त-शुद्धि का जो सर्वोत्कृष्ट उपाय है वह केवल भागवत श्रवण-कथन ही है और यहाँ तक कि

एतस्मादपरं किञ्चिन्मनः शुद्धौ न विद्यते ।
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ।।

(भागवतमाहात्म्य १/१२)

श्रीभागवतजी ही सर्वश्रेष्ठ साधन है, इससे बढ़कर कोई दूसरा साधन है ही नहीं और न हो सकता है । संसार में देखा जाता है कि वस्त्र यदि गन्दा हो जाए तो वस्त्र स्वच्छ करने के बहुत से उपाय हैं । आदमी कपड़ा धो सकता है, कपड़ा स्वच्छ हो जाएगा परन्तु यदि यह मन (चित्त) गन्दा हो जाए तो इसके शोधन के लिए क्या किया जाएगा, इसको किस साबुन से धोया जाएगा जिससे चित्त (मन) रूपी वस्त्र साफ़ हो जाए । कबीरदासजी महाराज ने कहा –

झीनी रे झीनी बड़ी झीनी चुनरिया ।
दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी,
जैसी की तैसी धर दीन्ही चुनरिया ।।

यह मन एक ऐसा वस्त्र है, जब भगवान् देते हैं उस समय बड़ा उज्जवल होता है, बड़ा स्वच्छ होता है लेकिन हमारी जो विषयाभिमुख वृत्ति है, वह इस मन को गन्दा कर देती है किन्तु गंदे कपड़े को साबुन से धोकर साफ़ किया जा सकता है पर यदि यह मन रूपी वस्त्र गन्दा हो जाए तो वहाँ कौन- सा साबुन पहुँचेगा, वह कैसे धुलेगा? लौकिक जगत में देखा जाता है कि कपड़ा गन्दा होने पर आदमी बाजार से खरीद के दूसरा वस्त्र ले आता है पर दूसरा मन कोई नहीं ला सकता, मन को खरीद के नहीं लाया जा सकता । इसलिए इस मन में जो विषय रूपी कीचड़ लग गयी है, उस कीचड़ को धोने के लिए श्रीमद्भागवत कथन-श्रवण, भागवतजी की कथा, भगवद्-भागवत चर्चा (भगवान् और भक्तों के चरित्र) श्रवण करने के अलावा, इससे बड़ा मन को शुद्ध करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है । अन्य साधनों से बाह्य शुद्धि होती है लेकिन भागवत कथन-श्रवण से आंतरिक शोधन हो जाता है ।

कोई वस्तु मेरी थी, मैंने इसे अर्पित कर दिया तो वह भी समर्पण नहीं माना जाता । भाव यह होना चाहिए कि भगवान् की वस्तु भगवान् के लिए समर्पित कर दी ।

श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित-श्रीमद्भागवत कथा (२२/२/१९८५)
संकलनकर्त्री / लेखिका- बाल व्यासाचार्या श्रीजी शर्मा, मानमंदिर, बरसाना

प्रथम अध्याय के बाद नारद जी ने भक्ति से बहुत सुन्दर बात कही –

"वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुखं गमिष्यति ।।"

(भागवत-माहात्म्य २/१)

हे बाले, अरे उदास क्यों हो रही हो, देखो कन्हैया जी के चरणकमल को स्मरण करो, दुःख तो जाने कौन से चूल्हे में चलो जावेगो ।

आज हम लोग या अग्नि में क्यों जल रहे हैं? क्योंकि कृष्ण-स्मरण नहीं कर रहे हैं तो भट्टी में जलेंगे ही । नारद जी कह रहे हैं कि कोई भी हो, राजा हो, रंक हो, ब्राह्मण हो, देवता हो, मनुष्य हो, जो कृष्ण-स्मरण नहीं कर रहा है, वो तो जलेगा ही भट्टी में, अनादिकाल से जरतो आयो है और हमेशा जरैगो, जीतेहू जरैगो और मरके भी जरैगो । **"कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्य कारिणी"** कलियुग में केवल भगवान् की भक्ति है, इसलिए हे भक्ति देवी! तुम कृष्णवल्लभा हो और एक बार तुमने कन्हैया से पूछी हाथ जोड़ करके कि हमारे लिए भी कछु आज्ञा देओ, तो प्रभु बोले – **"मद्भक्तान् पोषयेति"** 'हे भक्ति महारानी ! हमारे भक्तन् को पोषण करो ।' प्रभु को सबसे ज्यादा प्यारे भक्त हैं, उन्होंने तुम्हारे लिए मुक्ति दासी बना दियो, जो मुक्ति करोड़ों कल्प तक तपस्या करबे से नहीं मिले वो मुक्ति भक्ति की दासी है और ऐसी दासी है कि जो भक्त लोग हैं वो भी मुक्ति की ओर थूकैं हू नांय । वो तो कहें कि पिशाचनी है मुक्ति, भक्त लोग ऐसो कहें कि

"भुक्ति मुक्ति स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते ।"

मुक्ति पिशाचनी है, जाको बड़े मुश्किल से तपस्या, योग आदि साधनों से लोग प्राप्त करें वाको भक्त लोग कहें – ये पिशाचनी है, हमें खा न जाये, तू दूर ही रहियो । नारदजी भक्ति से कहते हैं कि भगवान् ने मुक्ति को तुम्हे दासी के रूप में दियो और ज्ञान, वैराग्य को तुम्हारो सहायक बनाय दियो, इस प्रकार द्वापर तक तुम बड़े आनंद से रही । कलियुग में मुक्ति तो बिल्कुल ख़त्म हो गई पाखंड रूपी रोग से, जहाँ देखो पाखंड ही पाखंड है । हम जैसे पाखण्डी साधु लोग जब देखते हैं कि कोई आ रहो है तो झट ध्यान लगाकर बैठ जाते हैं, माला भी करते हैं तो देखते हैं कि कोई देख रहो है कि नहीं, चार पैसा भी चढ़ा रहे हैं तो देखते हैं कि कोई देख रह्यो है कि नहीं, बहुत से लोग तो अपना नाम अलग से खुदवा लेते हैं । ये सब क्या है, पाखंड हम लोगों के रोम-रोम में घुस रहो है । प्रभु के लिए कोई कुछ नहीं करे, जो भी करे आदमी, वेश्या की तरह करे कि चार आदमी जान लें, चार आदमी हमारी तारीफ कर दें, चार आदमी हमारी सुन लें । "पाखण्डामय पीडिता" ये पाखंड बड़ी भारी बीमारी है, यासे कोई नहीं बच पावै, यासे पीड़ित होकर के मुक्ति महारानी तो क्षय को प्राप्त है गयी । तुम जब याद करो तब मुक्ति आवैं और चली जावैं । तुमने बच्चा बनाकर ज्ञान और वैराग्य को पाले लेकिन ये बेचारे बूढ़े है गये परन्तु वही बात नारद जी कह रहे हैं कि हे देवी, कलयुग में बड़ो कष्ट तुम्हें भी भयो और तुम्हारे बच्चान को भी भयो लेकिन बात यही है **"कलिना सद्द शः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।"** मैं वही बात कहूँगो भैया, चाहे तुम लोग जल रहे हो कलियुग की भट्टी में लेकिन फिर भी यही कहूँगो कि कलियुग के समान कोई युग नहीं है, कौन के लिए, जो कृष्ण कीर्तन करे, वाके लिए कलियुग अमृतमय रूप है, सद्यः(तत्काल) श्रीकृष्ण प्राप्ति होये । नारद जी कह रहे हैं – 'हे भक्ति महारानी ! मैं तुम्हें घर-घर स्थापित करूँगो, हे देवी ! कलियुग घोर पापी है किन्तु जाके अन्दर भक्ति आ जाये तो "पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम् ।" पापी भी कृष्ण मंदिर में निर्भय होकर बिना रोक-टोक के चले जाते हैं, उनको कोई रोक नहीं सकता । यहाँ नारदजी बड़ी सुन्दर बात कह रहे हैं – **"येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपणी।"** जिन लोगों के चित्त में भक्ति है, कैसी भक्ति -

"प्रेमरूपणी" इस शब्द को समझो और प्रेमरूपिणी वृत्ति बनाओ, सच्ची भक्ति करो । हम केवल माला सरका रहे हैं और काऊ प्राणी से प्रेम के अतिरिक्त व्यवहार कर रहे हैं तो यह भक्ति नहीं है । सर्वदा प्रेमरूपणी को मतलब है कि हर प्राणी में प्रभु अर्थात् श्री कृष्ण को देखते भये वासे प्रेम से व्योहार करो, ये है प्रेमरूपिणी भक्ति । केवल हम लोग माला फेर लेते हैं, पाठ कर लेते हैं और सोचते हैं कि हमने बड़ी भक्ति कर ली परन्तु प्रेमरूपिणी भक्ति को मतलब है कि काऊ छोटे-से बच्चे को भी मत डाँटो, काऊ प्राणी से कछु कठोर नहीं बोलो तो वह है प्रेमरूपा भक्ति, ऐसी भक्ति जाके अन्दर आ जाये, वो स्वप्न में भी यमराज को नहीं देख सकै, यमराज की सामर्थ्य कहाँ है वाके पास आयवे की । "न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा" प्रेत होय, पिशाच होय, राक्षस होय, असुर होय, जाके हृदय में भक्ति है, वाको ये छू भी नहीं सकैं, कैसे, जैसे हिरण्यकशिपु आदि असुर प्रह्लाद जी को छू भी नहीं सके, केवल भक्ति महारानी की वो शक्ति है, शक्ति है तो भक्ति में है और किसी में नहीं है । तपस्या, ज्ञान, वेद, योग आदि से कृष्ण नहीं मिलें **"भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः"** केवल कृष्ण भक्ति से, प्रेम से मिलें । याको प्रमाण गोपीजन हैं । सहस्त्रों जन्म के बाद, शुभ कर्म के बाद कृष्ण में भक्ति आवे, काऊ के अन्दर कृष्ण की भक्ति है तो समझलो याके पीछे लाखों करोड़ों वर्ष के पुण्य छिपे हुए हैं, ऐसेही नहीं कोई कन्हैया जू को भज ले, याय लिये भगवद्भक्त सों दबनो चाहिए, भक्त कौ आदर करनों चाहिए क्योंकि वाके पीछे करोड़ों वर्षों के पुण्य छिपे भये हैं, जब वो आज कृष्ण को भजन कर रहो है । हमें-तुम्हें दीखे नहीं, क्या करें, मोटी आँख है । और देखो हम बार-बार कह रहे हैं – "कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः" कलियुग में केवल भक्ति को आधार है, कन्हैया को अगर सामने तुम्हें देखनो है, ठाड़ो करनो है तो केवल भक्ति को ही आश्रय लेनो पड़ेगो "भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः" सामने ठाड़ो है कन्हैया अगर भक्ति है तो और देखो जो भक्त की निंदा भी करै तो बड़ो भारी वह महर्षि होय, चाहे बड़ो भारी पंडित होए किन्तु बड़ो दुःख पावै, दुर्वासा जी को देखलो, या लिए भक्तन से बड़ो डरियो सब लोग, भक्तन को अपराध न हो जाये, एक क्षण में नष्ट हो जाओगे । भगवत भक्त से बहुत डरियो । तुम्हारी क्या चलाई, रावण होय चाहे हिरण्यकशिपु होय । "रावण जबहिं बिभीषन त्यागा । भयउ विभव बिन तबहि अभागा ।।" राम ने तो पीछे मारो, वो पहले ही नष्ट हो गयो जब विभीषण को त्यागो । तो भक्त बहुत बड़ी वस्तु है, भक्ति जाके अन्दर है, इसलिये भक्त सो डरनो चाहिए । या प्रकार से जब नारद जी ने भक्ति महारानी से भक्ति की महिमा वर्णन कियो तो वह बड़ी प्रसन्न भयीं ।

.....

भागवत-धर्म

अंतर्राष्ट्रीय कथा व्यास – पं. रामजीलाल शास्त्री, मानमंदिर

संसार में भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है । यहाँ अनेकों धर्मों का प्रचलन है । जैसे - वैदिक धर्म, स्मार्तधर्म, लोकधर्म, मातृधर्म, पितृधर्म, पातिव्रतधर्म आदि परन्तु इन सभी धर्मों में भागवतधर्म सर्वश्रेष्ठ है, श्रद्धापूर्वक जिसका श्रवण करने मात्र से मनुष्य सब प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है ।

एक बार वसुदेव जी ने नारद जी के सामने भागवद्धर्म जानने की इच्छा व्यक्त की थी –

ब्रह्मंस्त्वत्थापि पृच्छामो धर्मान् भागवतांस्तव ।

याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतोभयात् ।।

(भागवत १/२/७)

भागवतधर्म जिसे सर्वश्रेष्ठ धर्म घोषित किया गया, आखिर वह धर्म है क्या? कौन-सी विशेष क्रिया है? भागवतधर्म कोई विशेष क्रिया नहीं है बल्कि जो-जो भी कर्म भगवान् को प्रसन्न करने के उद्देश्य से अर्थात् भगवान् की प्रसन्नता के लिए किये जाते हैं, उन्हें भागवतधर्म कहा जाता है ।

संक्षेप में भागवतधर्म के विषय में बताते हैं –

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ (भागवत ११/२/३६)

अर्थात् शरीर से, वाणी से, मन से अथवा इन्द्रियों से, बुद्धि से, अहं से अथवा स्वभाव वश मनुष्य जो-जो भी कर्म करे, उसे नारायण भगवान् को अर्पण कर दे अर्थात् अर्पण बुद्धि से कार्य करे ।

यह अर्पण शास्त्रों में दो प्रकार का बताया गया है – (१) वस्तु समर्पण (२) क्रिया समर्पण ।

'वस्तु-समर्पण' से तात्पर्य है कि हम अपने को जिस किसी वस्तु का मालिक समझते हैं - घर, मकान, जमीन-जायदाद, दुकान, मिल-फैक्ट्री, स्त्री-पुत्र आदि...उस मालकियत को ट्रांसफर (स्थानान्तरित) कर दें और सोच लें कि इन सबके मालिक तो भगवान् श्रीकृष्ण हैं, हम तो उनके नौकर-चाकर हैं । इसी भाव को श्रीसूरदासजी कहते हैं –

एहि विधि कहा घटैगो तेरो ।
नन्दनन्दन करि घर को ठाकुर, आपुन ह्वै रह्यो चेरो

मालिक प्रभु हैं, हम उनके सेवक हैं । भगवान् के दास, नौकर-चाकर, सेवक समझने में अपना गौरव समझो । जब सब वस्तु प्रभु की है, हम मालिक नहीं हैं तो सच्चा दैन्य आ जाएगा, 'अहं' नहीं होगा । 'अहं' भगवान् से अलग कर देता है और दैन्य भगवान् के निकट ले आता है । इसीलिए गोसाईं विट्ठलनाथजी ने विज्ञप्ति जी में कहा है –

यद्दैन्यम् त्वत्कृपा हेतुर्न तदस्ति ममाण्वपि ।
तां कृपां कुरु राधेश यथाहं तद्दैन्यं अवापुयाम् ।।

हे राधापति राधेश! जो दीनता आपकी कृपा का हेतु है, वह तो मेरे में अणुमात्र भी नहीं है, अतः आप ऐसी कृपा करें कि मुझे वह दीनता प्राप्त हो जाए जिससे मैं आपकी कृपा का भाजन बन सकूँ ।

प्रभु श्रीकृष्ण मेरे स्वामी हैं, मैं उनका सेवक हूँ इस अवधारणा से 'अहं-वृत्ति' का नाश एवं 'दैन्य' का प्रादुर्भाव हो जाएगा ।

दूसरा है – 'क्रिया-समर्पण'

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कर्म करने की एक विशेष टेक्नीक (तकनीक) बतायी है, उस विधि से यदि कर्म किया जाए तो वह कर्म बंधन को नष्ट कर देता है । व्यवहार में हम देखते हैं कि मनुष्य अच्छा-बुरा जैसा भी कर्म करता है, उसे उस कर्म का फल भोगना ही पड़ता है । यह कर्मफल को भोगना ही कर्म-बंधन कहा जाता है । कर्म करने से कर्मबंधन कभी नष्ट नहीं होता परन्तु उस कर्म को करने की यदि विधि बदल दी जाए तो कर्मबंधन नष्ट हो जाता है । जैसे किसी व्यक्ति को खांसी या जुकाम हो और उसे नीबू की शिकंजी दे दी जाए तो रोग और बढ़ जाएगा और यदि उसी नीबू की उसे चाय बनाकर दे दी जाए तो वह उसके लिए औषधि बन जायेगी । किसी के पेट में कब्ज है तो उसे ईसबगोल की भूसी गर्म दूध के साथ दे दी जाय तो पेट साफ़ हो जाएगा परन्तु किसी को दस्त लग रहे हैं, उस समय उसी ईसबगोल की भूसी को दही में मिलाकर दे दें तो दस्त बंद हो जायेंगे । कहने का भाव यह है कि यदि सेवन-विधि बदल दी जाए तो गुण बदल जाएगा । इसी तरह यदि हम अर्पण बुद्धि से कर्म करें तो निश्चित रूप से कर्मबंधन नष्ट हो जाएगा । भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कर्म करने की सरलतम

विधि बताते हैं जिसके अनुसार कर्म करने से मनुष्य कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – अर्जुन! तू जो कुछ भी कर्म कर, मेरे लिए अर्पण कर दे ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

(गीता ९/२७)

यत्करोषि - प्रारब्ध के अनुसार तुम जो कुछ भी करते हो – 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'– मेरे अर्पण कर दो । आप प्रोफ़ेसर हैं, जज हैं, मजिस्ट्रेट हैं, वकील हैं या किसी उच्च पद पर हैं, मंत्री हैं या संत्री हैं, किसान हैं या व्यापारी हैं, प्रारब्ध के अनुसार आप जो भी हैं और जो भी कार्य करते हो, उसे भगवान् को अर्पण करने की बुद्धि से करो । अर्पण कैसे करेंगे? वह कार्य करने से पहले भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर लो । नारद जी ने ध्रुव जी को एक छोटा-सा द्वादशाक्षर मंत्र बताया था – 'ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय' – जिसका अर्थ है वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम अर्थात् कोई भी कार्य करो, उसके पहले मंत्र बोलो – 'ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय ।' गीता के पूर्वोक्त श्लोक में भगवान् दूसरी बात कहते हैं – 'यदश्नासि' अर्थात् तुम जो कुछ भी खाते-पीते हो, तत्कुरुष्व मदर्पणम्, उसे मेरे अर्पण कर दो यानि बिना भोग लगाए कुछ खाना-पीना नहीं चाहिए ।

जो लोग भगवान् का भोग लगाए बिना (अर्पण किये बिना) खाते-पीते हैं, उनकी शास्त्र में बड़ी निंदा की गई है । भले ही वे कितने भी पढ़े-लिखे हैं, विद्वान् हैं, ऊँचे पद पर हैं, पैसे वाले हैं, प्रभावशाली हैं, कुछ भी हैं ।

विना अर्पितं तु गोविंदे यस्तु भुङ्क्ते नरः ।
श्वान विष्ठा समं चान्नं तोयं सुरया समम् ।।

गोविन्द भगवान् को अर्पण किये बिना अर्थात् भोग लगाए बिना मनुष्य जो कुछ खाता-पीता है, वह कुत्ते की विष्ठा की तरह गन्दा खाना-पीना है, भले ही आप समौसा, कचौड़ी, पकौड़ी कुछ भी खा रहे हैं, वह खाना-पीना 'just like the stool of dog' श्वान विष्ठा तुल्य है । आप चाय, दूध, काफी, ज्यूस, पानी आदि जो भी कुछ लेते हैं, बिना भोग लगाये वह मदिरा (शराब) की तरह से पीता है, जो कि पाप है ।

अतः कुछ भी खाओ पियो, मुँह में ले जाने से पहले मंत्र बोल लो - ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । इतना करने मात्र से भोग लग गया, आपका भोजन, खाना-पीना प्रसाद बन गया पर याद रखो भगवान् को सत्वगुण से युक्त सात्विक पदार्थ ही प्रिय लगते हैं । प्याज-लहसुन आदि तमोगुणी वस्तुओं का भोग नहीं लगाना चाहिए, जिन वस्तुओं का भोग नहीं लगा सकते, हमें भी वे वस्तुऐं नहीं खानी चाहिए ।

हम लोग चतुराई करते हैं, एक कटोरी सब्जी बिना प्याज-लहसुन के अलग निकाल लेते हैं भोग के लिए, फिर अपने लिए अलग से लहसुन का तड़का लगाकर खा रहे हैं, नहीं, ये गलत है । जो भगवान् को भोग लगाया जाये, वही खाओ । जिन तामसी वस्तुओं प्याज, लहसुन, शराब आदि का भोग नहीं लगा सकते, उन्हें खाना-पीना नहीं चाहिए । भगवान् को वही वस्तु भोग लगानी चाहिए जो उन्हें प्रिय हो । सात्विक वस्तुएं भगवान् को ज्यादा प्रिय हैं । आप इसे यों समझिये जैसे आपके घर कोई आपके रिश्तेदार आयें, उनकी इच्छा है कि उन्हें गर्म-गर्म चाय पिलाई जाए और तुम उनको शीतल पेय या बर्फ का पानी पिलाओ और इससे वे बीमार पड़ जायें तो क्या तुम्हे अच्छा लगेगा? जिस व्यक्ति को कुछ खिलाना-पिलाना है, वह उसकी रुचि के अनुसार होना चाहिए, उसी प्रकार भगवान् को भोग लगाने के लिए उनकी रुचि के अनुसार शुद्ध सात्विक वस्तुओं का ही भोग लगाना चाहिए । जिन वस्तुओं का भोग नहीं लगा सकते उन्हें खाना-पीना नहीं चाहिए ।

यज्जुहोषि – हवन, यज्ञ आदि जो भी पवित्र कार्य करते हो, उसे अपने नाम के लिए नहीं करो कि लोग तारीफ़ करेंगे

कि अमुक व्यक्ति बहुत बड़े भक्त हैं बल्कि भगवान् कहते हैं - तत्कुरुष्व मदर्पणम् - मेरी प्रसन्नता के लक्ष्य से करो ।

ददासि यत् – जो कुछ भी दान पुण्य करते हो, भगवान् बोले - तत्कुरुष्व मदर्पणम् - उसे मेरी प्रसन्नता के लक्ष्य से करो । दान हर मनुष्य को करना चाहिए परन्तु दुःख की बात है कि हम दान करते हैं नाम के लिए । कहीं कथा, यज्ञ अथवा मंदिर आदि में जाते हैं और वहां हमारा नाम बोला जा रहा है तो नाम के लिए ख़ुशी-खुशी हजारों रूपये दे देंगे और नाम नहीं बोला गया तो १० रुपये रख कर चले आयेंगे । दान करें, अच्छी बात है पर नाम के लिए नहीं करें अपितु इस भाव से करें कि हमारा यह द्रव्य सेवा में का आएगा । इस भाव से दान करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं ।

'यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।'

अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – हे अर्जुन! तू तपस्या भी करता है तो 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' - वह भी मेरे अर्पण कर दे, अपने नाम के लिए नहीं कर ।

प्रायः लोग तप भी करते हैं तो नाम के लिए, लोग कहेंगे कि ये बड़े तपस्वी हैं, कोई एक पैर से खड़े हैं, कौन हैं, खड़ेश्वरी महाराज हैं और कहीं उनसे हाथ छू गया तो गाली देने लगेंगे, कहेंगे - तुम जानते नहीं हो, हम एक पाँव से खड़े रहते हैं और तुमने हमको छू दिया । अरे भाई! ऐसी तपस्या से क्या लाभ जो इतना अहम् बढ़ जाए । तप किया जाता है ताकि 'अहं' घटे और यदि 'अहं' बढ़ रहा है तो उस तप से क्या लाभ? अतः सारांश में जो कुछ भी करो, खाओ-पियो, हवन, यज्ञ, दान-पुण्य, तपस्या आदि जो कुछ भी करो, भगवान् कहते हैं उसे मेरे प्रति अर्पण बुद्धि से करो । इस प्रकार कर्म करने से तुम कर्म-बंधन से मुक्त हो जाओगे ।

भगवान् के द्वारा अपनी प्राप्ति के जो-जो उपाय बताये गए, वे सभी भागवतधर्म हैं ।

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अञ्जः पुंसांविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ।।
यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित् ।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥

(भागवत११/२/३४,३५)

इन भागवत धर्मों का जो आश्रय ले लेता है, वह कभी विघ्नों से पीड़ित नहीं होता है और वह आँख बंद करके इस रास्ते पर दौड़ता चला जाए तो भी न तो गिरेगा और न ही उसका पतन होगा । लोगों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान् ने अनेकों लीलाएं की ताकि उन्हें सुनकर-गाकर वे सहज में भव सागर से पार हो जायें

संसार में भगवान् के जन्मों की, उनकी लीलाओं की अनेकों मंगलमयी कथाएं हैं, उनको हमेशा सुनते रहना चाहिए । उनके गुणों और लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले भगवान् के बहुत से नाम भी प्रसिद्ध हैं । जैसे गुण सम्बन्धी नाम हैं - भक्तवत्सल, दीनबन्धु, दीनानाथ, अशरणशरण, कृपासिंधु आदि, लीला सम्बन्धी नाम हैं - माखनचोर, चितचोर, चीरचुरैया, माखन खवैया, नागनथैया, गिरिवर उठैया, गिरधारी, रास रचैया, रास बिहारी, इन्द्रमर्दन, असुरनिकंदन आदि । इन नामों का गान करें, कीर्तन करें, कैसे, **गायन् विलज्जो** - लज्जा छोड़कर गायें और नाचें तथा किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थान में आसक्ति न रखें, इन सब से असंग हो जाए व स्वच्छंदता से विचरण करें ।

श्रृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥ (भा. ११/२/३९)

जो भक्त भगवान् के नाम, रूप, लीला, गुण और धाम के गान करने का व्रत ले लेता है, उसके हृदय में अपने प्यारे प्राणधन के नाम संकीर्तन से अनुराग का, स्थाई प्रेम का अंकुरण होने लगता है, उसका चित्त द्रवीभूत हो जाता है और वह साधारण लोगों की स्थिति से ऊपर उठ जाता है,

लोक बाह्य हो जाता है फिर यह नहीं सोचता कि लोग क्या कहेंगे? वह कभी हँसता है तो कभी रोता है और कभी उन्मत की तरह नाचने लगता है, कभी उच्च स्वर से पुकारता है ।

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ (भागवत ११/२/४०)

जो मनुष्य भगवान् की शरण लेकर उनका भजन करने लगता है, उसे भजन के प्रत्येक क्षणों में भगवान् के प्रति प्रेम, अपने प्रेमास्पद प्रभु के स्वरुप का अनुभव और उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं में वैराग्य, इन तीनों की एक साथ ही प्राप्ति होती है जैसे भोजन करने वाले को प्रत्येक ग्रास के साथ -१. तुष्टि (तृप्ति का सुख) २. पुष्टि (जीवन शक्ति का संचार) ३. क्षुधा निवृत्ति, ये तीनों एक साथ होते जाते हैं । (भा. ११/२/४२)

.....

श्रीमद्भगवद्गीता

पितामह भीष्म का इतिहास

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन (१४/१२/२००६) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका- साध्वी पद्माक्षीजी, मानमंदिर, बरसाना

भीष्म पितामह का नाम 'भीष्म' क्यों हुआ? इसका कारण समझने के लिए एक कथा है – एक बार राजा शान्तनु टहल रहे थे यमुना के किनारे, तो उस समय सत्यवती जो मल्लाह की पुत्री थी, मल्लाह से पैदा नहीं हुई थी, वह थी तो एक दिव्य क्षत्रिय राजा उपरिचर की पुत्री । राजा उपरिचर स्वर्ग लोक तक जाते थे, एक बार स्वर्ग लोक में गए थे तो उनको याद आयी अपनी स्त्री की, उस समय वह स्त्री धर्म में थी, स्त्री धर्म के बाद पुरुष जब अपनी स्त्री से सहवास करता है तो संतानोत्पत्ति होती है, इसलिए सहवास जरूरी था । इन्होंने एक पक्षी के माध्यम से अपना वीर्य स्त्री के पास भिजवा दिया । सत्यवती भी शाप से मल्लाह की कन्या बनी थी । पक्षी आकाश में उड़ा, उसके गले में इनका तेज (वीर्य) था, पक्षी-पक्षी लड़ पड़े अपना चुग्गा (भोजन की सामग्री) समझकर के तो वह वीर्य पानी में गिरा और रानी के पास नहीं पहुँच पाया और उसको एक मछली ने निगल लिया । वह वीर्य अमोघ था, महापुरुषों का वीर्य अमोघ होता है, बेकार नहीं जाता है इसलिए मछली ने गर्भ धारण किया और उससे मत्स्यगन्धा सत्यवती पैदा हुई ।योजनगन्धा भी उसका नाम था क्योंकि उसके शरीर से एक योजन (चार कोस) तक सुगन्ध फैलती थी । सत्यवती को मत्स्यगन्धा भी कहते हैं, योजनगन्धा भी कहते हैं, वह बड़ी सुन्दर थी, इसके पिता मल्लाह थे । सत्यवती नाव से यात्रियों को पार उतारा करती थी । एक बार पाराशर ऋषि यमुना तट पर आये । उन्होंने सत्यवती से कहा कि मुझको पार उतारोगी तो वह बोली –"हाँ"। जब यमुना के बीच में नाव पहुँची तो पाराशर जी ने कहा – "रोको नाव ।" सत्यवती ने नाव रोक दिया और पाराशर जी उस कन्या की ओर आसक्ति से देखने लग गए तो उसने मना किया कि आप ऋषि होकर के क्या करते हैं? पाराशर जी की कबीर ने भी निंदा किया है-

"रमैया तेरी दुल्हन ने लूटा बजार ।
श्रृंगी की मिंगी कर डारी, पाराशर के उदर विदार ।।"

लेकिन पाराशर कामी नहीं थे ।पाराशर ने देखा कि इस समय गर्भाधान से जो बच्चा पैदा होगा वह भगवान् होगा ।

पाराशर ज्योतिष शास्त्र के सबसे बड़े पण्डित थे, ग्रह-नक्षत्र जानने वाले कालज्ञ थे तो उन्होंने विचार किया –"इतना शुभ मुहूर्त है, इस समय गर्भाधान करने से ईश्वर पैदा होगा तो क्यों न ईश्वर को पैदा किया जाय? " तो कारण ये था लेकिन इस बात को नहीं समझ पाये बहुत से लोग ।उन्होंने उस कन्या से सम्पर्क करने की बात कही, स्वयं कन्या को समझाया कि तुम हमसे सम्पर्क करो, इससे संसार का कल्याण होगा, ईश्वर पैदा होगा तो कन्या समझ गयी और उस कन्या ने कहा- "लेकिन हमारी बदनामी होगी ।" पाराशर बोले – "नहीं, बदनामी नहीं होगी, तुरन्त बच्चा पैदा होके, बड़ा होकर के चला जायेगा ।" सत्यवती बोली – "पालन –पोषण कौन करेगा? " पाराशर बोले –" बच्चा बड़ा हो जाएगा अपने आप ही ।" सत्यवती बोली – "नीचे पानी है, पानी में ये सब कार्य नहीं करना चाहिए, पवित्र जल है ।" तब काई बना दिया उन्होंने । सत्यवती –"आकाश में सूर्य देख रहे हैं ।"तब कुहरा बना दिया उन्होंने कि सूर्य भी नहीं देखेंगे । फिर वह बोली – "मेरे शरीर से मछली की दुर्गन्ध आती है एक योजन तक ।" पाराशर बोले – "अच्छा, हम स्पर्श कर देते हैं, तुम्हारे शरीर से दिव्य गन्ध आएगी, अब तुम मत्स्यगन्धा नहीं, योजनगन्धा हो जाओगी हमारे सम्पर्क से ।" इस प्रकार पाराशर ऋषि का सत्यवती से सम्पर्क हुआ और तुरन्त गर्भाधान हुआ, उससे वेद व्यास पैदा हुए, पैदा होते ही वह तो बड़े ऋषि बन गये, उनके पालन-पोषण की जरूरत नहीं रही क्योंकि वह तो ईश्वर रूप थे । हाथ जोड़कर के वह पाराशर जी से बोले – "पिता जी! आज्ञा दीजिये ।" पाराशर ने कहा –"अपनी माँ से तुम पूछ लो, पिता से माँ का अधिकार ज्यादा होता है।" सत्यवती नाम था उनकी माँ का । व्यासजी ने उनसे पूछा – "माता जी! आज्ञा दीजिये ।" सत्यवती बोली – "जब समय पर मैं जो कहूँगी, वह तुमको करना पड़ेगा, अब तुम जाओ ।" व्यासजी चले गये ।

सत्यवती जी बहुत सुन्दर थीं, एक दिन वह यमुना तट पर घूम रहीं थीं । उसी समय राजा शान्तनु पहुँचे यमुना किनारे, सत्यवती को देख के मोहित हो गए, ऐसा रूप था । शान्तनुजी घर आकर के बीमार पड़ गए, काम ज्वर चढ़ा । देवव्रत (भीष्म) शान्तनु के पुत्र थे, अभी बड़े नहीं हुए थे । इन्होंने पूछा –"पिता जी! आप क्यों उदास रहते हैं? " पिता जी ने कहा कि बेटा इस बात को हम बता नहीं सकते, तुम्हारे पास उपाय नहीं है । देवव्रत बोले – "मेरे पास सब उपाय है ।"

<u>मनुष्य के पास अगर इच्छा शक्ति सही होती है तो भगवान् उसकी सहायता करते है ।</u>

आस्तिक तो थे ही, शान्तनु ने बता दिया कि मेरी आसक्ति एक मल्लाह की लड़की में हो गयी है । भीष्मजी तुरन्त घोड़े पर चढ़कर के गये, वह युवराज थे और उस लड़की के पिता के पास जाकर के उन्होंने कहा कि तुम अपनी कन्या हमारे पिता को दे दो । मल्लाह ने कहा – "दे तो दूँगा लेकिन मेरी शर्त है, वह संपर्क इससे करेंगे, पुत्र पैदा होगा किन्तु राजा तुम बनोगे क्योंकि तुम बड़े लड़के हो तो राजा सत्यवती के पुत्र को ही बनना चाहिए, तुम राजा मत बनना ।" देवव्रत बोले – "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं राजा नहीं बनूँगा, ये पहली मेरी प्रतिज्ञा है ।" मल्लाह ने कहा – "तुम राजा नहीं बनोगे लेकिन जो तुम्हारा पुत्र पैदा होगा, कानून से उसका अधिकार हो जायेगा, तब क्या होगा? " देवव्रत बोले – "मैं विवाह ही नहीं करूँगा, ये दूसरी मेरी प्रतिज्ञा है ।" खड़े होकर के उन्होंने देवताओं को साक्षी करके प्रतिज्ञा किया – "देवव्रत प्रतिज्ञा करता है कि कभी विवाह नहीं करेगा ।" उस समय आकाश से आवाज आयी – भीष्म ! भीष्म !! भयानक प्रतिज्ञा है । 'भीष्म' का अर्थ है – बड़ा भयानक । देवताओं ने समर्थन किया कि इतना बड़ा त्याग आज तक किसी ने नहीं किया, अपने पिता के लिए उन्होंने भोग छोड़ दिया तो इस तरह से वह देवव्रत से भीष्म बन गए ।

चित्रांगद, विचित्रवीर्य इनके भाई थे, सत्यवती से पैदा हुए थे, वे भी शान्तनु के लड़के थे, वे दोनों थोड़ी अवस्था में मर गए क्योंकि भोगी थे, कहानी उनकी बड़ी लम्बी है । जब वे दोनों मर गए तो दोनों की स्त्रियाँ अनाथ हो गयीं, विधवा हो गयीं, अब वंश कैसे चले तो सत्यवती को चिंता हुई, इन्होंने याद किया व्यासजी को कि मेरा पुत्र है, बड़ा तेजस्वी है, जो कहो सो कर सकता है । व्यासजी आये, बोले – "माताजी कैसे याद किया? " सत्यवती बोलीं – "अब हमारा वंश नष्ट हो रहा है, तुम वंश को चलाओ, संतान उत्पन्न करो ।" वेद व्यासजी बोले – "मैं ऋषि हूँ । मैं कैसे संपर्क करूँ लेकिन आपकी आज्ञा है तो दृष्टि से संतान पैदा कर दूँगा, सम्भोग की जरूरत नहीं है, हमारे सामने ये स्त्रियाँ नग्न होकर निकलें और मैं दृष्टि से देखूँगा, उसी से इनको गर्भ रह जायेगा ।" अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका ये तीनों बहिनें थीं, इनको भीष्म जीतकर लाये थे और अपने भाइयों को ब्याह दिया था । बड़ी पुत्रवधू अम्बा को सत्यवती ने आज्ञा दी कि तुम मेरे बेटे (वेदव्यास) के पास जाओ, वंश चलाना है इसलिए संकोच नहीं करो, मेरी आज्ञा है, तुमको पाप नहीं लगेगा, नग्न होके जाओ । सास की आज्ञा से वह नग्न होकर गयी लेकिन व्यास जी को देखकर के लज्जा, भय और संकोच से उसने आँख बंद कर लिया । व्यासजी ने उसे देखा और देखने के बाद कहा – "अब तुम जाओ ।" वहाँ सत्यवती आयीं और बोलीं – "बेटा! काम हो गया ।" व्यासजी बोले – "पुत्र तो होगा लेकिन अन्धा होगा, माता के दोष से ।" सत्यवती ने पूछा – क्या दोष है? व्यासजी बोले – अम्बा की सच्ची श्रद्धा नहीं थी, आँख बंद कर लिया इसने, मैं क्या करूँ, मैं ऋषि हूँ, इसे मेरे पास निर्भय होकर पवित्र भाव से आना चाहिए था । सत्यवती बोली – "दूसरी रानी और है अम्बिका, उसको भेजती हूँ ।" सत्यवती ने दूसरी बहू अम्बिका से कहा कि बेटी तू जा, तुझको कोई दोष या पाप नहीं लगेगा, व्यासजी ऋषि-महर्षि हैं, संकोच नहीं करना इनसे । सास की आज्ञा से वह निर्वस्त्र होकर गयी तो भय के कारण पीली पड़ गई, व्यासजी ने उसको देखा नेत्रों से और कहा – ठीक है, अब जाओ । जब वह चली गयी तो फिर सत्यवती आयी, बोली –"बेटा! काम हो गया? " व्यासजी बोले – हो तो गया लेकिन वह भय से पीली पड़ गयी । इसलिए पीले रंग का लड़का होगा माता के दोष से क्योंकि इसकी भी सच्ची श्रद्धा नहीं थी । इसलिए पीले रंग के पांडु उत्पन्न हुए जो पाण्डवों के पिता थे और पहला पुत्र धृतराष्ट्र अन्धा पैदा हुआ । पहली रानी से धृतराष्ट्र पैदा हुआ, दूसरी रानी से पांडु पैदा हुए । सत्यवती बड़ी दुःखी हुई और व्यासजी से बोलीं – "एक बार और अवसर दो, बेटा ।" व्यासजी बोले – "आखिरी अवसर है ।" सत्यवती बड़ी रानी के पास गयी और बोली कि तू एक बार फिर से व्यासजी के पास जा, छोटी रानी को भी सत्यवती ने फिर से व्यासजी के पास जाने की आज्ञा दी । ये दोनों रानियाँ व्यासजी के पास फिर से नहीं जाना चाहती थीं, इनकी एक दासी थी, वह बड़ी भक्त थी, इन दोनों रानियों ने उससे कहा कि हमारे स्थान पर तू व्यासजी के पास चली जा और हम लोग अपनी सास से झूठ बोल देंगी कि व्यासजी के पास हम हो आयीं । वह दासी स्नान करके बड़ी श्रद्धा के साथ महर्षि व्यास के पास गई, उन्होंने उस पर दृष्टिपात किया तो उससे विदुरजी उत्पन्न हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे, महान भक्त थे और भक्ति में जो स्थान विदुर जी को मिला वह आज तक किसी को नहीं मिला, न पांडु को, न धृतराष्ट्र को और न किसी अन्य को । भगवान् ने स्वयं उनके (विदुर के) घर जाकर केले के छिलके खाए । पाण्डव बचपन में भीष्म की गोद में खेलते थे, अतः भीष्म इनके बाबा लगते थे । इस तरह से भीष्म पांडवों के बाबा लगते थे, वही दादा बोले गए ('दादा' माने बाबा), तो भीष्म को पाण्डव दादा जी कहते थे । इसलिए अर्जुन भगवान् से कह रहे हैं कि मैं अपने (दादा) बाबा को कैसे मारूँ, जिनकी गोद में मैं खेलता था,

जिनकी गोद में पला–बढ़ा । इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा- "कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये" । भीष्म को (अपने पितामह को) मैं कैसे मारूँगा? द्रोणाचार्य को कैसे मारूँगा, इषु – बाणों से, योत्स्यामि – युद्ध करूँगा, प्रति-लड़ाई के बदले लड़ाई, मैं हमला नहीं करूँगा लेकिन युद्ध में तो ये लोग हमला करेंगे ही । दोनों पूजा के योग्य हैं, तो हे अरिसूदन! हम कैसे इनसे युद्ध करेंगे? इस प्रकार अर्जुन ने अपनी समस्या भगवान् के सामने रखी ।

.....

श्रीभगवन्नाम-महिमा

परविद्या 'राधा-नाम'

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन (२०,२१/५/२०१०) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका- साध्वी ब्रजबालाजीजी, मानमंदिर, बरसाना

जितने भी भगवन्नाम हैं, उन नामों में अंशी का नाम ही प्रधान होता है । जैसे - अनेक विष्णु नामों में 'राम नाम' प्रधान हुआ क्योंकि रामावतार में लीलाओं का विकास अधिक हुआ, जीवों का कल्याण हुआ तथा अंशी की अधिक अभिव्यक्ति हुई, उसी तरह से श्रीकृष्ण जो अंशी हैं जब वह अवतरित हुए तो जिन प्रेम की कलाओं का रामावतार में विकास नहीं हुआ था उन संपूर्ण प्रेम कलाओं का कृष्णलीला में विकास हुआ । इसी दृष्टि से ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि 'राम नाम' एक हजार विष्णु नाम के बराबर है और 'कृष्ण नाम' तीन हजार विष्णु नाम के बराबर है । उसका मूल कारण है –

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥

(श्रीमद्भागवत१/३/२८)

स्वयं भगवान् कृष्ण ही अंशी हैं और शेष जितने भी अवतार हैं, वे कोई-कोई तो भगवान् कृष्ण के अंश हैं, कोई-कोई भगवान् की कलाएं हैं, कोई-कोई अंशांश हैं लेकिन अंशी श्रीकृष्ण हैं । इसीलिए 'राम' नाम को तारक ब्रह्म कहा गया है । स्वयं नाम ही तारक अर्थात् तारता है । इसी तरह 'कृष्ण' नाम पारक है ।

अंशी का नाम और अंश के नाम में कोई अन्तर नही है । जैसे वेदों में 'ॐ' की महिमा बताई गई है और भगवान् ने भी गीता में कहा कि 'ॐ' कहते हुए शरीर छोड़ोगे तो तुम मुझे प्राप्त हो जाओगे । आठवें अध्याय के अनुसार भगवन्नाम कहते-कहते शरीर छोड़ोगे तो भगवान् मिलेंगे ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(गीता ८/१३)

नाम ब्रह्म है । भगवान् कह रहे हैं कि जो एकाक्षर नाम ब्रह्म है, इस नाम का उच्चारण करते हुए, मेरा स्मरण करते हुए जो मनुष्य शरीर छोड़ता है, वह परमगति को प्राप्त हो जाता है । यही बात नाम और नामी में भी है अर्थात् भगवान् और 'ॐ' एक ही चीज है । इसी बात को भगवान् ने गीताजी ८/५ में भी कहा है –

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

(गीता ८/५)

मुझको अर्थात् कृष्ण को स्मरण करते हुए जो मनुष्य देह त्याग करता है । कृष्ण या कृष्ण नाम एक ही है । यह न समझ पाने के कारण मनुष्य भ्रमित रहता है । गीता को समझना कठिन है । गीता ८/५ में कृष्ण या कृष्ण नाम की बात है । भगवान् कहते हैं कि जो मुझको स्मरण करते हुए या मेरे नाम का उच्चारण करते हुए शरीर छोडता है, वह मुझको ही प्राप्त हो जाता है । इसीलिये 'भगवन्नाम का स्मरण, भगवन्नाम का कथन' गीता में बताया गया है । कृष्ण ही प्रणव हैं, कृष्ण ही कृष्णनाम हैं, दोनों में अभेद है । इसी प्रकार 'राधा नाम' की महिमा श्रीराधासुधानिधि में लिखी है । सारा संसार कृष्ण को जपता है और कृष्ण 'राधा-राधा' जपते हैं, कैसे जपते है? राधासुधानिधि में वर्णन आता है कि श्रीकृष्ण यमुना जी के किनारे जाकर के योगीन्द्रों की तरह बैठ जाते हैं और राधारानी के चरणों का ध्यान करते हैं और प्रेम के आँसुओं सहित 'राधा नाम' का जप करते हैं, उससे आकर्षित होकर राधारानी उनकी ओर दौड़ती हैं । ये बात जानना भी आवश्यक है कि 'नाम' का अर्थ क्या है? 'नम्' अर्थात् झुकना, जैसे – नमस्कार, '**नमति नमतः नमन्ति**' और नम से ण्यन्त प्रत्यय किया, 'ण्यन्त' माने जैसे पढ़ना और पढ़ाना, झुकना और झुकाना, करना और कराना, इसको ण्यन्त कहते हैं ।

"नामयति भगवन्तं इति नाम ।"

जो भगवान् को झुका देता है, उसको कहते हैं 'नाम' । 'झुकाना' अर्थात् बुला लाता है, खैंच लेता है । मान लो किसी सेठ का नाम है करोड़ीमल । अगर उसका नाम लेकर पुकारो - अरे भाई करोड़ीमल, तो वह ही बोलेगा, दूसरा नहीं बोलेगा । जैसे किसी लड़की का नाम है – मंजू । यदि हम 'मंजू' कहेंगे तो वही बोलेगी बाकी सब लड़कियाँ नहीं बोलेंगी । इस प्रकार जो भगवान् को झुका दे, भगवान् से मिला दे, उसको कहते हैं 'नाम' । 'नम्' धातु से ण्यन्त्य प्रत्यय करके नाम बना है । जब श्रीकृष्ण ने राधारानी का नाम जपा तो वह झुकीं ।

कालिन्दी तट कुञ्ज मंदिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पद,
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।

केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहिता
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ।।

(श्रीराधासुधानिधि – ९५)

इसिलिये 'राधा नाम' को पराविद्या कहा गया है । अन्य जितने भी भगवन्नाम हैं, उनसे पराविद्या को ऊँचा कहा गया है । पद्मपुराण में महादेव जी ने पार्वती जी को युगलमंत्र का उपदेश दिया । 'राम नाम' तारक है, 'कृष्ण नाम' पारक है और 'राधा नाम' प्रेमदायक है । इस नाम को देवता और अन्य लोग नहीं जान सकते । 'राधानाम' का ठाकुरजी श्रवण करते हैं, जपते हैं और सब सखियों के साथ गाते हैं । इसका प्रीतिपूर्वक उच्चारण करने से प्रेम मिलता है । यह प्रेमानन्द देने वाला है ।

नाम-महिमा में गोसाईं जी ने बालकाण्ड के १९वें दोहे की दूसरी चौपाई में कहा है –

'विधि हरि हरमय बेद प्रान सो ।'

इस चौपाई का ये भाव है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव में भी नाम ही का प्रकाश भासित होता है । समस्त सृष्टि में नाम की ऐसी महिमा है कि नाम ही ब्रह्म है तथा नाम ही सारा संसार है । गीता ८/१३ में भगवान् ने कहा है –

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(गीता ८/१३)

ब्रह्म ही ॐ है अर्थात् नाम ही ब्रह्म है।

****

धाम-महिमा

धाम-दर्शन से धामी-मिलन

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन (५/१/२००४) से संग्रहीत

संकलनकर्ता / लेखक - संत ध्रुवदासजी महाराज, मानमंदिर

श्रीजी की रूप-छटा ही भक्तों का सब कुछ होता है । जिसकी रूप में आस्था नहीं है, उसको सगुण साकार उपासना सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि भगवान् ने स्वयं कहा कि समस्त कल्याणों की अन्तिम सीमा हमारा दर्शन है । अपने इष्ट का दर्शन हो जाए फिर कुछ मिलना बाकी नहीं रहता - भागवत में भगवान् ने इस बात को कहा है । ब्रह्मा जी के सामने भी यही समस्या आई थी और भगवान् ने १६ वां और २१ वां अक्षर 'तप' करने की उन्हें आज्ञा दी थी । ब्रह्माजी ने दिव्य सहस्त्र वर्षों तक तप किया । उसके बाद सबसे पहले भगवान् ने उनको साक्षात् अपना धाम दिखाया । भगवान् के दिव्य धाम के प्रति अगर आस्था नहीं है तो उपासना सिद्ध नहीं होगी ।

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः
संदर्शयामास परं न यत्परम् ।

(श्रीमद्भागवत २/९/९)

भगवान् ने ब्रह्माजी को सबसे पहले अपना लोक दिखाया । धाम के दर्शन के बाद धामी, इसलिए जो लोग धाम में आस्था नहीं रखते हैं, उनके लिए भी सगुण साकार उपासना कैसे सिद्ध होगी क्योंकि सबसे पहले भगवान् जिस धाम में रहते हैं, उस धाम के दर्शन के बाद ही तो धामी का प्रादुर्भाव होता है । इसलिए भगवान् ने सबसे पहले ब्रह्माजी को अपना धाम दिखाया । जिस धाम से आगे और कोई चीज नहीं है, जैसे - गीता में भगवान् ने कहा है –

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

(श्रीमद्भगवद्गीता १५/६)

(लेकिन अद्वैतवादी लोग इस श्लोक में धाम का अर्थ 'तेज' कर देते हैं ।) भागवत में शुकदेव जी ने कहा -

स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥

(श्रीमद्भागवत २/४/१४)

अपने धाम में भगवान् (श्रीराधामाधव) रमण करते हैं । उपासक में यदि धाम की भावना नहीं है तो धामी की भावना कैसे हो जायेगी? उपासना सिद्ध नहीं हो सकती । धामी के दर्शन के पहले धाम का दर्शन होता है । जिसकी धाम में आस्था नहीं है, उसकी सगुण-साकार उपासना सिद्ध नहीं होगी । इसीलिए ये सब बातें समझने के बाद ही आस्था दृढ़ होती है, उसके बिना आस्था दृढ़ नहीं होती है ।

रामायण में भगवान् राम ने कहा –

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुखरासी ।।

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-४)

मेरा यही अवतरित धाम, जो पुरी है, ये नित्य धाम में पहुँचा देती है । यह स्पष्ट रूप से सभी के समझ में नहीं आता है । जैसे भगवान् ने अवतार लिया, राम अवतार हुआ अयोध्या में, मथुरा में श्रीकृष्ण प्रकट हुए । 'अवतरण' माने नीचे उतरना तो किसी एक स्थान पर भगवान् उतरेंगे क्योंकि सर्वव्यापक रूप से तो वह सब जगह हैं, वहाँ तो अवतार का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि ब्रह्मरूप से भगवान्

सब जगह हैं । अवतार का अर्थ ही है कि सगुण साकार भगवान् किसी एक स्थल पर प्रकट होते हैं, उसी तरह से धाम का भी अवतार होता है । गर्गसंहिता में वर्णन है कि जब श्यामसुन्दर पृथ्वी पर अवतार लेने के लिए तैयार हुए, तब श्रीजी ने कहा –

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ।।

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड-२.७)

'मैं पृथ्वी पर तभी चल सकती हूँ जब वृन्दावन, यमुना और गोवर्धन भी साथ में हों ।' तब भगवान् ने कहा कि ये भी चलेंगे । अतः इन सबका अवतरण भी धाम के साथ हुआ । धाम का अवतार सर्वत्र नहीं होता है, ये एक रहस्य की बात है । क्योंकि जैसे धाम विभु है, भगवान् भी विभु हैं । जब-जब भी धाम का अवतार होता है, इसी स्थल पर होता है । जहाँ अयोध्या है, वहाँ साकेत उतरेगा, जहाँ ब्रज है, वहीं सब दिव्य धाम आयेंगे । इनका अवतरण और कहीं नहीं होता । ऐसा नहीं कि धाम का अवतार अमेरिका में हो गया । (अमेरिका में लोगों ने नया बरसाना बनाया है, न्यू वृन्दावन भी बनाया है लेकिन यह new, old, नयी दिल्ली-पुरानी दिल्ली वाला काम नहीं है । ये तो मनगढ़ंत बातें हैं ।) यह एक सिद्धांत है कि जहाँ धाम है, वहीं नित्य धाम का अवतार होगा । जब भरत जी राम जी को मनाने के लिए चित्रकूट गए थे तो सब तीर्थों का जल ले गए थे कि मैं उनका वहीं अभिषेक करूँगा । वहाँ अभिषेक हो नहीं सका क्योंकि रामजी ने कहा कि अभी तो हमें चौदह वर्ष तक वन में रहना है । फिर यह प्रश्न हुआ कि पृथ्वी के इतने सारे तीर्थों का जल कहाँ रखा जाये? अब भगवान् भी लीला-दृष्टि से अनजान हैं । भरतजी भी नहीं जानते यानि लीला दृष्टि से धाम की महिमा भगवान् भी नहीं जानते । जब रामजी वन में पहुँचे तो उन्होंने वाल्मीकिजी से पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? तो वाल्मीकिजी ने कहा कि आप मुझसे अज्ञानी की तरह पूछते हो? लेकिन फिर भगवान् की इच्छा समझकर कहा कि आप उन भक्तों के हृदय में रहो, जिनमें कोई कामना नहीं होती । इसके बाद कहा कि आप चित्रकूट में रहो क्योंकि वह आपका नित्य धाम है । उधर भरत जी के सामने प्रश्न आया कि राम जी के अभिषेक हेतु लाया गया तीर्थों का जल कहाँ रखा जाये तो अत्रि मुनि ने कहा कि इस कूप में रखो । पूछा गया कि इसी कूप में क्यों रखें तो उन्होंने कहा –

तात अनादि सिद्ध थल एहू ।
लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – ३१०)

यह प्रमाण है अर्थात् धाम का अवतार सब जगह नहीं हो जायेगा । जैसे – कोई कहे कि दिल्ली में बरसाना बन गया है या कोई कहे कि हमारे लिए कलकत्ते में वृन्दावन है और कोई कहे कि अमेरिका में भी ब्रज धाम है; ठीक है आस्था रखना, जैसे - मूर्ति को कहीं पर भी स्थापित करके उपासना की जा सकती है । लेकिन ये वह (वास्तविक अवतरित धाम) कैसे हो जाएगा क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि ब्रज तो ब्रज ही है ।

.....

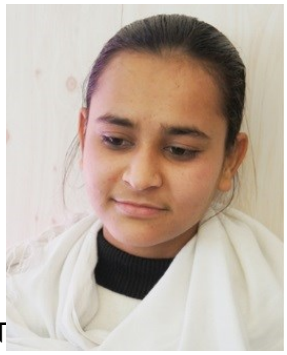

श्रीराधासुधानिधि

'सेवा' से रासरस में प्रवेश

श्रीबाबा महाराज के प्रवचन (२/५/१९९८) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका- साध्वी सुगीताजी, मानमंदिर, बरसाना

श्रीराधामाधव के लीला-विहार को सूरदासजी ने पदों में गाया और राधासुधानिधिकार ने श्लोकों में लिखा कि देखो - सुन्दर यमुना तट जहाँ गौरांगी सखियों के मध्य में झूमती हुई चली आ रही हैं। वृन्दावन की सुशीतल पवन यमुनाजी का स्पर्श कर श्रीकिशोरीजू की सुगन्ध लेती हुई श्रीकृष्ण के निकट पहुँचकर सेवा करती है। श्रीजी के दिव्यांग की दिव्य सुगन्ध को प्राप्त करके श्रीकृष्ण उनके वश में हो जाते हैं और उनके रोम-रोम में रस भर जाता है क्योंकि श्रीराधारानी श्रीकृष्ण की आत्मा हैं।

वस्तुतः यह रस की कथा है। इसका श्रवण करके परीक्षित जी ही चक्कर खा गए और शुकदेव जी से पूछ बैठे कि श्रीकृष्ण ने परस्त्रियों के साथ रास क्यों किया। यह श्रृंगार रस से भरी हुई प्रेमरस की लीला जिसके लिए ब्रह्मा-शिव भी तरसते हैं, उसको समझना सबके वश की बात नहीं है। यह सबसे ऊँचा रस है, जिसके लिए रसराज श्रीकृष्ण भी प्यास लेकर यहीं श्रीजी के पास आते हैं। इन लीलाओं के प्रति अत्यधिक सावधानी व बहुत अधिक श्रद्धा की आवश्यकता है क्योंकि इस लीला का गान-श्रवण करने के उपरान्त जिस पर बहुत अधिक श्रीजी की कृपा होगी, वही इन रसमयी लीलाओं का रसास्वादन करता है।

जगत प्रसिद्ध परमभागवत श्रीनरसीजी के सामने भी रसाराधना (नृत्य-गान द्वारा महारास-लीलागान) के कारण विषम परिस्थितियाँ आईं, जिससे सांसारिक दण्ड भोगना पड़ा। अतः इस रस का गान करने के लिए एक बहुत बड़ी कसौटी है।

श्रीनरसीजी का जीवन-वृतान्त है कि जब नरसी बचपन में अपने बड़े भाई-भाभी के द्वारा घर से निष्कासित कर दिए गए थे जंगल में जाकर शिवजी के मंदिर में सात दिन तक भूखे पड़े रहे। विपत्ति आने पर मनुष्य भगवान् के सन्मुख होता है। जब तक वह मौज में घूमता रहता है, धन संम्पत्ति कुटुम्ब व भोग की आसक्ति से घिरा रहता है तब तक उसे भगवान् की स्मृति नहीं होती है। भगवान् की स्मृति तो तभी होती है जब सिर पर जूते पड़ते हैं। घर से निकाले जाने पर नरसी जी जंगल में जाकर एक शिवालय में भूखे-प्यासे पड़े रहे प्राणोत्सर्ग करने के लिए। महादेव जी तो बड़े दयालु हैं, उनका नाम ही आशुतोष है, शीघ्र प्रसन्न होने वाले हैं, उन्होंने देखा कि मेरे मंदिर में एक बालक सात दिन से भूखा-प्यासा पड़ा है। इसकी तो मृत्यु हो जाएगी। सात दिन, सात रात व्यतीत हो गए। अंतिम रात्रि थी, भूख-प्यास से विकल नरसी जी को मूर्छा आ गयी थी। बालक तो थे ही ऐसे में मृत्यु होने पर क्या देर थी, जब ऐसा लगा कि अब तो इनके प्राण बिलकुल नहीं बचेंगे, उसी क्षण मंदिर के शिवलिंग से बड़े जोर से डमरू की डम-डम ध्वनि हुई और अत्यधिक तीव्र प्रकाश उत्पन्न हुआ। नरसी जी के नेत्र खुले और वह सोचने लगे कि यह आवाज कहाँ से आ रही है, सामने देखा तो वहाँ डमरू बजाते हुए महादेव जी खड़े हुए थे। बड़ी सुन्दर कर्पूर की तरह उनकी श्वेत कान्ति थीं, मुस्कुरा रहे थे, मस्तक पर चन्द्रमा चमक रहा था। शिवजी के साक्षात् दर्शन से नरसी की समस्त भूख-प्यास और थकान मिट गयी। महादेवजी ने उनसे पूछा – 'बेटा ! तू क्या चाहता है? ' नरसीजी छोटे-से थे, क्या कहते? शिवजी ने पुनः कहा – अरे ! कुछ मांग ले। नरसी जी बोले – बाबा ! जो तुमको सबसे अधिक प्रिय वस्तु है, वह मुझको देदो। बालक ने माँगा भी तो क्या माँगा, सब कुछ माँग लिया। हम जैसे मूर्ख व्यक्ति होते तो कहते – 'हे महादेव ! हमें धन सम्पत्ति दे दो, महल-अटारी दे दो, बहू-बेटा दे दो।' लेकिन उस बच्चे ने ऐसा माँगा जो कोई नहीं माँग पाया। शिवजी मुस्कुराने लगे और सोचने लगे कि इस बालक ने क्या माँग लिया। मेरी सबसे प्रिय वस्तु है **भगवान् का रास**, जिसके लिए मैं गोपी बनता हूँ, नारी का रूप धारण करता हूँ। शिव जी बोले – अच्छा, मैं तुझे अपनी सबसे प्रिय वस्तु भगवान् श्रीकृष्ण के महारास का दर्शन कराऊँगा। ऐसा

कहकर महादेवजी नरसीजी को एक क्षण में गोलोक धाम ले गए और बोले - रास में सबको प्रवेश नहीं है, सेवा के द्वारा ही वहाँ प्रवेश होता है, सेवा ही असली भक्ति है। ऐसा कहकर उन्होंने नरसी जी को रास में मशाल दिखाने की सेवा प्रदान की। नरसी जी को रास में राधामाधव के दर्शन हुए। भगवान् ने उनसे कहा कि अभी तुम पृथ्वी पर जाओ, तुम्हारे द्वारा संसार में भक्ति का प्रचार-प्रसार होगा। ऐसा कहकर ठाकुर जी ने नरसी जी को पृथ्वी पर भेज दिया। ५२ बार नरसी जी को भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उनकी सहायता की। नरसी जी का बहुत विशाल चरित्र है। वह श्री कृष्ण रस का गान किया करते थे। उनकी दो पुत्रियाँ थीं कुंवरबाई और रत्नाबाई। कुंवरबाई का विवाह हुआ, विवाह के पश्चात् भात में भगवान् द्वारा चमत्कार दिखाए जाने पर वह नरसी जी के पास वापस लौट आई कि मुझे नास्तिक लोगों के साथ नहीं रहना है। उसका तो कल्याण हो गया। छोटी पुत्री रत्नाबाई ने तो विवाह ही नहीं किया, उसने बड़ी बहन के ससुराल वालों का हाल देख लिया था और समझ गयी थी कि विवाह के पश्चात् बड़ी दुर्दशा होती है। इसलिए उसने निश्चय कर लिया था कि मुझे इस झगड़े की झोपड़ी में नहीं फँसना, वह आजीवन अविवाहित ही रही। दोनों कन्यायें युवा थीं और नरसी के कीर्तन में नृत्य किया करती थीं। नरसीजी रात भर रास के पद गाया करते थे और उनकी पुत्रियाँ रात्रि पर्यंत नृत्य किया करती थीं। अब यह विचारणीय बिंदु है कि इस रस को समझना कठिन है। जब रात्रि पर्यन्त नृत्य-गान होगा तो दुष्ट लोग उसे दूसरी दृष्टि से देखते हैं और उस रस को न समझने के कारण सोचते हैं कि यहाँ तो युवक व युवतियां हैं और यहाँ श्रृंगार-रस की चर्चा हो रही है अतः अवश्य ही यहाँ विकृतियाँ होंगी।

नरसी जी के कीर्तन में दो बाहर की गायिकायें थीं, वे वेश्यायें थीं और दूर देश से आई थीं। वे जब नगर में गाने गयीं तो किसी ने उनका ठीक से सम्मान नहीं किया। वे बहुत ऊँचे स्तर की गायिकायें थीं। अब कोई ऊँची श्रेणी का गायक आकर अपना गायन प्रस्तुत करे और उसको पाँच रुपये दिए जाएँ तो वह क्यों लेगा? इसी प्रकार मजाक में इन दोनों गायिकाओं से नगर के लोगों ने कह दिया कि हमारे यहाँ सर्वश्रेष्ठ गायक तो नरसी जी हैं। उनके स्थान पर दिन-रात्रि नृत्य-गायन का कार्यक्रम चलता रहता है। अन्यों के यहाँ तो कभी-कभी ही नृत्य-गान होता होगा जबकि उनके यहाँ तो प्रतिदिन महफ़िल जमती है। तुम लोग वहाँ जाओ, वहाँ तुम्हारा सम्मान होगा। उन लोगों की बात सुनकर दोनों गायिकायें वहाँ से चलीं और नरसी जी के निवास स्थान पर पहुँची। नरसी जी के यहाँ धन सम्पत्ति तो थी नहीं, उन्होंने देखा कि वहाँ रास के एक पद का गायन हो रहा है। नरसी जी की दोनों पुत्रियाँ नृत्य कर रही थीं। वहाँ नरसी जी की मामी भी थीं। नरसी जी के मामा का नाम था सालगराय। नरसी जी के सत्संग के प्रभाव से उनकी मामी पर भी कृष्ण प्रेम का रंग चढ़ गया था, इसी कारण से उनके मामा नरसी जी से द्वेष करते थे। वह सदा यही सोचा करते थे कि नरसी की कैसे मृत्यु हो जाए क्योंकि उनकी स्त्री नरसी जी के कीर्तन में रात भर नृत्य करती थीं। मामा जी का जूनागढ़ के बादशाह के यहाँ काफी सम्मान था। जूनागढ़ के बादशाह के दरबार में तीन नरसी जी के शत्रु थे। प्रथम तो उनका बड़ा भाई बंसीधर जो नरसी जी से अत्यधिक द्वेष करता था। दूसरे शत्रु मामा सालगराय और तीसरा शत्रु था मुखिया सारंग धर। ये तीन टिकट महा विकट थे। इन्होने राजा से शिकायत की कि नरसी जैसा पाखंडी, बदमाश, गुण्डा और चरित्रहीन और कोई नहीं होगा। राजा ने पूछा – क्यों? ये तीनों बोले – पहले तो उसकी पुत्रियाँ नृत्य गान करती थीं, उसकी मामी भी पीछे से नृत्य करने लगी, इनके अतिरिक्त वहाँ दो वेश्यायें भी अब सम्मिलित हो गयीं हैं।

उधर वे दो गायिकाएं जब नरसी जी के स्थान पर पहुँची तो देखा कि वहाँ रास का पद गाया जा रहा है, श्रीकृष्ण रस बह रहा है । इस रस के लिए तो ब्रह्मा-शिवादि भी तरसा करते हैं । जिस पर राधारानी की दया होती है, उसी को इस रस की प्राप्ति होती है । ये दो गायिकाएं विचार करने लगी कि हम लोगों ने जीवन भर गाया परन्तु ऐसे आनन्द का अनुभव तो कभी नहीं हुआ जैसा कि यहाँ पर इन लोगों की आँखों से कृष्णप्रेम के कारण अश्रुपात हो रहा है, शरीर पुलकित हो रहा है । कृष्ण प्रेम का ऐसा दिव्य वातावरण देखकर एक रात्रि में ही इन गायिकाओं के अन्तःकरण की सारी कालिमा नष्ट हो गयी ।

.....

गोपी-गीत

शरणागति का स्वरूप

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन (१/११/१९९५) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका- साध्वी देवश्रीजी, मानमंदिर, बरसाना

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥

(भागवत १०/३१/७)

श्रीधर स्वामी जी ने इस श्लोक की अपनी टीका में बताया कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के चार गुणों का यहाँ वर्णन किया है –

(१) शरणागतवत्सलता
(२) कृपा
(३) सौभाग्य
(४) वीर्यातिरेक,
ये चार विशेषण हैं ।

'प्रणतदेहिनां पापकर्शनम्' में शरणागतवत्सलता, इसलिए यहाँ श्रीकृष्ण के पहले गुण शरणागति का वर्णन चल रहा है । भगवान् की शरणागति से ही पापों, दुष्कर्मों का नाश होता है । अन्य साधनों से अंशमात्र पाप नाश होता है । योग, ज्ञान, वैराग्य आदि जितने साधन हैं, इनसे पापों का सम्पूर्ण नाश नहीं होता है । शरणागति से ही सम्पूर्ण पापों का नाश होता है । क्योंकि श्रीधर स्वामी कहते हैं – वीर्यातिरेक अर्थात् भगवान् में ही अनन्त शक्ति है । यह बड़ी सुन्दर बात है । साधन कोई कितना भी करेगा, सीमित ही करेगा चाहे लाख वर्ष कर ले, दो लाख वर्ष कर ले, इससे ज्यादा नहीं कर पायेगा जबकि कर्म अनंत हैं । अनंत को अनंत ही समाप्त कर सकता है, साधन नहीं । जो लोग ऐसा समझते हैं कि साधन से कर्मों का नाश होता है, कभी भी तत्त्वज्ञान उनको नहीं हो सकता है,

यह गुन साधन ते नहिं होई ।
तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ।।

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड – २१)

जब तक जीव में 'अहं' है तब तक वह शरणागति के तत्त्व को नहीं समझ सकता । शरणागति के तत्त्व को समझना तभी संभव है जब सच्चा दैन्य आ जाये, इसे 'दैन्य' कह लो अथवा 'निरहं' कह लो, बात एक ही है । कोई समझे या न समझे, जिस पर प्रभु की कृपा है, वह समझ लेता है । गोपियाँ कह रही हैं –

(भागवत १०/३१/७) ये गोपिकायें वेद की श्रुतियाँ हैं,

शरणागति से ही सर्वपाप विमोचन संभव है और कोई रास्ता नहीं है । यह पहले ही कहा जा चुका है कि शरणागति में 'अहं' बाधक है । 'अहं' को खत्म करना या दीनता लाना एक ही बात है । दैन्य जितना आता है, उतना ही मनुष्य ईश्वर के समीप पहुँचता है । नारद जी ने अपने भक्तिसूत्र में बहुत अच्छी बात कही है, उन्होंने एक सूत्र बनाया है –

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ।

ईश्वर को भी द्वेष है, द्वेष किस बात से है । उसे अभिमान से द्वेष है । जिसके भीतर थोड़ा-सा भी 'मैं' है, भगवान् उसके अभिमान से द्वेष करते हैं । कोई बहुत बड़ा तपस्वी हो गया, बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया, बहुत बड़ा योगी हुआ, बहुत बड़ा विरक्त हुआ किन्तु यदि इन साधनों से थोड़ा भी 'अहं' आता है तो भक्ति की प्राप्ति असंभव है ।

जैसे - भक्तमाल की एक छोटी-सी कथा है, इसके द्वारा अनुमान लग सकता है कि प्रणति (शरणागति) कितनी कठिन वस्तु है । श्रीरामानुजाचार्यजी भक्ति के बहुत महान आचार्य हुए हैं, वह शेष जी के अवतार थे । उन्होंने विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना की, भक्ति का प्रचार किया । शेषावतार होने के कारण वह साक्षात् ईश्वर ही थे । कोलदेश के राजा ने इनको जान से मारने का कुचक्र किया था । प्राचीन भारत में सांप्रदायिक वैमनस्य बहुत अधिक था । कोल नरेश कट्टर शैव था, उसने रामानुजस्वामी को शास्त्रार्थ हेतु अपने दरबार में आमंत्रित किया । इनके अनुगामी भक्तों ने आचार्य चरण से अनुरोध किया कि आप वहाँ मत जाइए क्योंकि वह एक दुष्ट राजा है और भक्ति-विरोधी है, जाने क्या कुचक्र आपके विरुद्ध रच दे । इनकी जगह कूरेश जी और महापूर्ण स्वामी जी कोलनृप के यहाँ गये । कूरेश जी ने अपने गुरुदेव रामानुजाचार्य जी का वेष बना लिया । कोलनृप के दरबार में बहुत बड़ा शास्त्रार्थ हुआ । कूरेशजी ने कोलनृप के समर्थक शैव पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया । कोल नरेश तो पहले से ही वैष्णवों का विरोधी था, जब शास्त्रार्थ में कूरेश जी और महापूर्ण स्वामी विजयी हो गये और जब उनकी विदाई का समय आया तो कायदे से राजा को इन्हें पुरस्कार देना चाहिए था, इनकी आधीनता ग्रहण करना चाहिए था किन्तु दुष्ट कोल नरेश ने अपना आदेश सुनाया कि इनकी हमारे यहाँ से यही विदाई दी जायेगी कि इन दोनों वैष्णवों की आँखे निकाल ली जायें । हुआ भी वही, इन दोनों महापुरुषों ने इसीलिए अपने गुरुदेव श्रीरामानुजाचार्य जी को यहाँ आने को मना किया था क्योंकि दुष्ट व्यक्ति कुछ भी घृणित कार्य कर सकते हैं । अस्तु, कोलनरेश की आज्ञा से श्री कूरेश जी तथा महापूर्ण स्वामी जी की आँखे निकलवा दी गयीं । कितना भयंकर अत्याचार किया गया । आँखे निकालने के बाद इन दोनों को छोड़ दिया गया । अँधा करने के बाद यह कहकर इन्हें छोड़ दिया गया कि जहाँ भी तुम्हें जाना हो, भटकते हुए चले जाओ । दोनों महापुरुष चले, महापूर्ण स्वामी जी तो मार्ग में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए क्योंकि अंधे बनने के बाद कोल नरेश के यहाँ से अपने स्थान तक सैकड़ों कोस जाना अत्यंत दुष्कर कार्य था । यह वर्तमान युग का भारत तो था नहीं कि बस या रेलगाड़ी से यात्रा की जाये । कूरेश जी रामानुजस्वामी जी के पास चल दिये । गुरुदेव ने देखा कि यह अँधा मेरे पास आ रहा है तो वह रोने लग गये और कुरेश जी जब उनके पास पहुँचे तो गुरुदेव ने कहा कि तुमने मेरे लिए अपने नेत्र गँवा दिये । परन्तु कुरेश जी बोले कि मुझे बहुत प्रसन्नता है । मैं आपका वेश बनाकर वहाँ गया, यदि आपके ऊपर कोई आपत्ति आती तो मैं मर जाता । अब तो मैं जीवित हूँ और परम प्रसन्नता से जीवित हूँ कि गुरु-सेवा हेतु मेरे नेत्र चले गये और हमारे जीवन-प्राणाधार श्रीगुरुदेव बच गए ।

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ।। (भा.७.१०.६)

जिस समय मनुष्य समस्त कामनाओं को छोड़ देता है, उस समय वह साक्षात् कृष्ण रूप हो जाता है।

जनाबाई की भक्ति-शक्ति

श्रीबाबामहाराज के (एकादशी) प्रवचन (१०/३/२००६) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका-भक्तमालिनी साध्वी गौरीजी, मानमंदिर, मानपुर, बरसाना

भारतवर्ष में मुस्लिम आतताइयों ने यहाँ की हिन्दू जनता के ऊपर इतना भीषण अत्याचार किया कि उस समय भक्तों ने ही देश को बचा लिया नहीं तो आज इस देश में एक भी हिन्दू नहीं रहता। इस्लामी शासन में देश के चारों कोनों में महान भक्त अवतरित हुए, जैसे - बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, उत्तरप्रदेश में तुलसीदासजी, सूरदासजी, कबीरदासजी आदि, राजस्थान में मीरा, महाराष्ट्र में नामदेव-ज्ञानदेव आदि तथा दक्षिण भारत में आलवार संत; यदि ये संत-भक्त नहीं होते तो भारत में एक भी हिन्दू नहीं बचता, न धर्म रहता, न भक्ति रहती और न भगवान् का यश रहता। इसीलिए परशुरामदेवाचार्य जी ने कहा है-

संत हरि के बाप हैं, संत हरि के पूत।
परशुराम जो संत न होते, रामहु जाते अऊत।।

ये भक्त लोग ही भगवान् के पिता हैं, उनका यश फैलाते हैं और भगवान् के पुत्र हैं, भगवान् रक्षा करते हैं। भक्त नहीं होते तो राम भी निपूते हो जाते, संसार में उनका कहीं नाम नहीं रहता, कहीं भी नाम ही नहीं सुनाई पड़ता कि भगवान् क्या चीज हैं।

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा।
चन्दन तरु हरि संत समीरा।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -१२०)

समुद्र से पानी बादल बरसाते हैं, हम लोग समुद्र के पास नहीं जा सकते। भगवान् समुद्र हैं लेकिन किस काम के हैं अगर संत रूपी बादल न होंवे, चन्दन किस काम का अगर हवा नहीं होगी तो सुगंध तुम्हारे नाक में नहीं आएगी। संत और भक्त ही हवा हैं जो भगवान् का यश हमको देते हैं। महाराष्ट्र में एक ऐसी ही भक्त हुयी हैं, जिनका नाम जनाबाई था, ये नामदेव जी के परिकरों में थीं, वृद्धा थीं। नामदेवजी की कुटिया में बहुत से संत आते थे, उनको भोजन कराने के लिए ये अकेले ही उठ करके चक्की चलाकर आटा पीसती थीं। रात-रात भर चक्की चलाती थीं, वृद्धावस्था के कारण हाथ-पाँव नहीं चलते थे लेकिन ठाकुरजी एक खेल करते थे - ये चक्की चलाते समय कीर्तन करतीं, नेत्रों से आँसू बहते रहते तो भगवान् बिट्ठल इनके साथ चक्की चलाया करते थे। जनाबाई को पता नहीं पड़ता था, चक्की में दो किलो, पाँच किलो, दस किलो आदि जितना भी अन्न वह छोड़ देतीं, वह सब दो मिनट में ही पिस जाता था क्योंकि उसे ठाकुरजी पीस देते थे, इनको पता नहीं पड़ता था, ये तो समझती थीं कि मैं कीर्तन कर रही हूँ, भगवान् के

नाम के प्रभाव से सब आटा पिस जाता है । पानी भरने जातीं, बुढ़िया थीं तो ठाकुर जी स्त्री का रूप धारण करके इनका पानी भरवा देते थे । पंडरपुर में चन्द्रभागा नदी है, उसके तट पर ये रहती थीं । एक दिन की बात है कि इनको रात में विरह सताया, ये अपनी कुटिया से निकल कर भागीं और एक मंदिर में घुस गयीं । प्रभु की इच्छा थी अतः इनके प्रेम को देख करके मंदिर का दरवाजा अपने आप खुल गया जबकि पुजारी लोग रात को मन्दिर का दरवाजा बंद कर देते हैं । जनाजी ने मंदिर खुला देखा तो भीतर चली गयीं और प्रेमावेश में रात भर नाचती रहीं और गोपाल को बुलाती रहीं । उसी बीच में कुछ चोर भी मन्दिर में आ गए । चोरों ने देखा कि मंदिर खुला है तो वे मंदिर में घुस गये और साक्षात् ठाकुरजी के हरिग्रीवा पदक (वक्षःस्थल का हार), जो बहुत कीमती था, उसको चोरी करके भाग गये किन्तु जनाबाई को कुछ पता नहीं पड़ा, वह तो आत्मविस्मृत होकर भगवत्प्रेम में नाचती रहीं । भक्तों से चिढ़ने वाले भी बहुत होते हैं बल्कि भक्तों से प्रेम करने वाले कम होंगे लेकिन चिढ़ने वाले ज्यादा होते हैं क्योंकि वे उनका यश देखकर चिढ़ जाते हैं और ऐसा सबके साथ हुआ है । श्रीतुलसीदासजी के ऊपर मारण मन्त्र का प्रयोग हुआ, मीराजी को भी बहुत यातनाएं दी गयीं, चैतन्यमहाप्रभु जी तो नदिया छोड़कर चले गये क्योंकि ईर्ष्यालु लोगों ने उनकी बहुत बदनामी की थी । कुढ़ने वाले पहले पैदा हो जाते हैं, गुलाब के पेड़ में फूल पीछे आएगा, काँटा पहले लग जाता है । इधर प्रातःकाल होने पर जब मन्दिर खुला तो पुजारियों ने देखा कि ठाकुरजी का 'हरिग्रीवा पदक' गायब हो गया है । सबने कह दिया कि चोर तो यह बुढ़िया जनाबाई है । उससे पूछा गया तो वह बोली कि ठाकुरजी का हार मैंने नहीं लिया । लोगों ने उससे पूछा कि तू मन्दिर में कब आई थी तो वह बोली कि रात को आयी थी । सब बोले – "पकड़ लो ।" उसे पकड़कर न्यायालय ले गए, वहाँ सबने गवाही दे दिया कि यह खुद ही कह रही है कि रात भर मैं मन्दिर में रही । जज ने पूछा कि रात को तेरे अलावा और कोई भी मन्दिर में आया था, तो सीधी-सादी जना ने कह दिया कि रात को मन्दिर में मेरे सिवा और कोई नहीं आया । दुष्ट लोगों ने जज से कहा – "सरकार! यह स्वयं गवाही दे रही है कि रात को मेरे अतिरिक्त मन्दिर में कोई और नहीं आया, तो और कौन चोर होगा? " लोगों के कहने से जना को सूली की सजा सुना दी गयी । सूली की सजा बहुत कष्टदायक होती है, फाँसी फिर भी अच्छी होती है । सूली में एक लोहे की बड़ी ऊँची सुई होती है और अपराधी को गुदा के सहारे उस सुई के ऊपर बैठा दिया जाता है और कष्ट के कारण जैसे-जैसे वह हिलता है, वैसे-वैसे वह सुई उसके शरीर के अन्दर घुसती जाती है । फाँसी में तो थोड़ी देर में आदमी मर जाता है किन्तु सूली में कई दिन लग जाते हैं मरने में, वह सबसे खराब मौत होती है । तलवार से काट दो, थोड़ी देर में आदमी मर जाएगा, बल्लम मार दो, थोड़ी देर में तड़प-तड़प के मर जाएगा परन्तु सूली की सजा सबसे खराब होती है । जो दुष्ट कुढ़ने वाले लोग थे, उनकी शिकायत पर जनाबाई को सूली की सजा दे दी गयी । दुष्ट लोगों ने प्रचार किया कि देख लो, ये बड़ी भगत बनती थी और इसके साथी लोग, ये सब बड़े चोर हैं, ठगते हैं दुनिया को, वैसे तो ढोलक बजायेंगे, झांज बजायेंगे, 'हरि-हरि' करते हैं लेकिन ये सब खाने-कमाने का धंधा है । जना चोर है, आज देख लो, इसे सूली की सजा दी जा रही है । हजारों लोग चंद्रभागा नदी पर इकट्ठे हो गये क्योंकि वहीं पर आज जना को सूली पर चढ़ाया जायेगा । भक्त लोग भी वहाँ गए कि हम प्रभु का कीर्तन करेंगे, प्रार्थना करेंगे ताकि वे जना की रक्षा करें । भगवन्नाम संकीर्तन ही सहारा होता है भक्तों का और तो कुछ सहारा होता नहीं है । वहाँ सब तरह के लोग गए और जना जी को चोर की तरह लाया गया । भक्त हर हालत में प्रसन्न रहता है ।

जनाबाई ने सोचा कि चलो विट्ठल की ऐसी ही इच्छा है तो ऐसे ही सही, जैसे भी विट्ठल खुश रहे, मुझे सूली दे रहा है, चलो कोई बात नहीं ।

बिट्ठल चाहे सूली दे दे, बिट्ठल चाहे माला दे दे,
मैं तेरी हूँ...मैं तेरी हूँ ...।

चाहे तू माला पहना, चाहे तू सूली दे, मैं खुश हूँ । इसी को भक्ति कहते हैं । हे गोविन्द!

ऐसा प्यार दे सूली भी फूलों की शैया हो जाए ।

भीष्म पितामह बाणों की शैया में पड़े थे लेकिन भगवान् का भजन करते रहे, कृष्ण आये तो वे बाण उनके लिए बाण नहीं रहे, फूल जैसे बन गए थे ।

ऐसा प्यार दे अंगारे जलते भी शीतल हो जायें ।।

प्रह्लाद के लिए आग भी शीतल हो गयी, विश्वास रखो ।

ऐसा प्यार दे पर्वत भी टकरा-टकरा गिर जावें ।

प्रह्लाद को पहाड़ों से गिराकर मारा गया तो पहाड़ टूट गए ।

ऐसा प्यार दे सागर भी लहरा-लहरा तर जाए ।
विट्ठल चाहे शूली दे दे, विट्ठल चाहे माला दे दे,
मैं तेरी हूँ...मैं तेरी हूँ ...।

जनाबाई को लाया गया, उन्हें देखकर जितने भक्त थे, सब रो रहे थे, वे कह रहे थे – "हे प्रभो ! ये बुढ़िया के साथ क्या हुआ? " लेकिन जनाबाई खुश है ।

ले, ले नाम तेरा मैं विट्ठल जा पकड़ूँगी सर्प जाल ।

अरे विट्ठल! तेरा नाम लेके मैं सर्पों से लिपट जाऊँगी, मुझे कोई दुःख नहीं होगा ।

ले, ले नाम तेरा मैं विट्ठल जा लिपटूँगी विकट काल ।

ये शूली भयानक काल है लेकिन तेरा नाम ले-ले कर मैं इससे लिपट जाऊँगी । इसे भक्ति कहते हैं ।

ले, ले नाम तेरा मैं विट्ठल विष पी लूँगी हलाहाल ।
ले, ले नाम तेरा, मैं विट्ठल नाचूँगी घुस ज्वाल माल ।

आग में घुस जाऊँगी, मुझे डर नहीं है ।

ऐसा प्यार दे सागर भी लहरा-लहरा तर जाए ।
विट्ठल चाहे शूली दे दे, विट्ठल चाहे माला दे दे,
मैं तेरी हूँ...मैं तेरी हूँ ...।
विट्ठल मेरो प्राण विट्ठल मेरो प्राण,
गोविन्द मेरो प्राण, गोविन्द मेरो प्राण ।
गोपाल मेरो प्राण, गोपाल मेरो प्राण,
गोविन्द मेरो प्राण, गोपाल मेरो प्राण ।

जनाबाई को देखकर भक्त लोग रो रहे थे और दुष्ट लोग हँस रहे थे कि देख लो, कीर्तन करने वालों का यही मजा होता है, बड़े नाचते थे, ढोलक बजाते थे । जब जनाबाई को सूली के ऊपर बैठाला गया तो सारा संसार देख रहा था, वह लोहे की सूली थी, वह जंग लगा हुआ लोहा नहीं होता है, वह तो फौलाद होता है और उस सूली पर जैसे ही जनाबाई को बैठाया गया तो वह सूली मोम की तरह पिघल गयी और आराम से जनाबाई जमीन पर आ गयीं और विट्ठल भगवान् का संकीर्तन करती रहीं, सारा संसार देख करके आश्चर्य में हो गया; ये जनाबाई की भक्ति-शक्ति का अलौकिक चमत्कार था, इसलिए भक्ति ही सबसे बड़ी शक्ति है, जिसके आगे सब शक्तियाँ शून्य हो जाती हैं ।

.....

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ (भा. ९/१९/१७)

माँ, बहिन, कन्या के साथ भी एकांत में एक आसन पर एक साथ नहीं बैठना चाहिए । ये सब बातें अत्यन्त सूक्ष्म हैं ।

यह स्वयं अपने मन में निरीक्षण करना चाहिए कि कौन-सी वस्तु हमारे भीतर प्राकृत भाव उत्पन्न कर रही है?

DHAAM-NISHTHAA

RAVIJI MONGA, NEW DELHI

My Baba told me that here I was, staying in Barsana and yet keeping records of people outside of Dham. Why and who for? When one is in Dham then I should only think and meditate about Dham.

Therefore, we do not even belong to the second level of Dham realization. Even when we try to meditate about Dham, we are not able to perceive it the real Dham. It shall not reveal itself because "*Dheyam Naïve kadaapi Yatra divnaa tasyaa kripa sparshtah ".* We are not able to receive kripa because we are facing the wrong direction. We are acting as businessmen. We perform spiritual discourses like businessmen. I do not say this for everyone, hence do not be offended. I talk about myself. We are no less than businessmen, selling their goods.

Adantsya Vineetsya vritapratha pandata manay naa
Na gudaaye bhaantism nataseva jitatmana

We people are like artists, performers. We sing and dance to please people. We are *dharma dwajees*.

Ethardartho lokasminav avtarow maykrita
Badhya mein dharamdwajjinastehi patakino adhika

How can we reap the benefit of Kripa. Lectures are not delivered to make money. The Lord says that only saints can deliver spiritual discourses.

Yeh maam param guhiyam madbhakeshu vidhaseti
Bhktim mahim param kritwa maam eva vash sanshaya

Where there is no possibility of any other expectation. None what so ever.

What was the monetary collection? What was offered? What kind of tributes paid or obeisance offered? Now a day's one can find advertisements about a *katha* even up to 4 months in advance. Compare this to the *Katha* of Sukhdev ji. When he arrived at the venue of *Katha*, none could recognize him. Actually, he was so unassuming that no one could guess that he could be the main speaker. It is mentioned that most people assumed him to be a lunatic who had wandered in and even pelted stones at him.

Alaksho lingo nijlabh toosto,
pradasch balihi avdhoot vesha

His appearance had nothing that could describe him as the main *Katha Vyaas*. He had walked in as a silly wanderer, crude and unclothed. He was *nijlabh toostho*; somebody who is not bothered about gathering a crowd, respect or appreciation. He

did not bother about the number of people who would attend his discourse. One should compare this to the Kathakar(katha vyaas) of today who will get into a mental depression if the crowd is lesser than what was expected. They turn gloomy. They no longer remain in a good mood to deliver a spiritual discourse. What is one to think of such speakers? Are they speaking for appreciation or they doing it for God? Are these the attributes of a *Kathakar*(spiritual lecturer). However, this is a sad fact today. On the other hand, Sookdav ji was mistaken for a lunatic. Children harassed him and even threw stones at him. However, when sukdev ji reached the stage of Katha, everybody stood up in respect. There were exalted rishis there; *sanaatan rishis, rishis* from all four *yugas* and innumerable such personalities, kings etc. *Taato nivraha yabudhe stereo bhaha.* It was the same sukdev ji who upto now was an object of ridicule by women and children.

This is why God has said *Bhaktimayee Paraam Kritwaa* – When one who is accomplished in Bhakti speaks. People like me who have no Bhakti in their hearts (**Note**: at this moment when Baba was speaking, the electronic musical equipment kept there automatically started playing itself. At this Baba said this is an acknowledgement by the instrument that he does not Bhakti in his heart. Even the instrument knows that he is right in saying that he has no Bhakti within him.). So when there is no Bhakti in ones heart, one reaps nothing. One can keep one's eyes shut for a long time but nothing shall be revealed. The only thing that shall appear is that "Oh, the feast prashadam time has been set to 12 o' clock and it is already 11o' clock. I should be going by now".

So we were talking about the second stage of Dham realization. The first being "*Yad Radha Pad Kinkiri Krita Hridam, Samyek Bhavet Gocharam*". The pure *kainkarya bhaav*- The first level of Dham realization where all physical identifications cease to exist.

The second level was Dhaam Avtaarna – the realization of Dham by meditating about it. This again is impossible as one is not able to reap the benefit of Kripa.

Now, the third level. Here, even I can confidently claim to be there. And this is *Yat Premamrit Sindhu saar rasdam Paapaik Bhaajaam.* The *Dhaam*'s mercy delivers an ocean of pure love - *Premamrit Sindhu saar* to the hearts of even those who carry nothing but sins and vices within them 24 hours a day. In Dham there is no such thing as – No Vacancy. All your sins shall be pardoned. For example, the washer man and his group of Sitaji detesters & critics were pardoned by Dham. Let us have an example from Braj too. Bhrama ji stole the cowherd friends of Krishna. Later, he admitted that he had committed a big sin in doing so

"मानमंदिर की गतिविधियाँ"

मुख्यमंत्री श्री योगी जी का माताजी गौशाला में आगमन

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री आदित्यनाथ योगी जी एवं हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर ने मानमंदिर सेवा संस्थान की प्रख्यात माताजी गौशाला में देश के सबसे बड़े गोबर गैस संयंत्र का लोकार्पण किया एवं गौमाता का दर्शन कर गौसेवा की भूरि-भूरि प्रशंसा किया कि ब्रज का वास्तविक स्वरूप राधारानी की लीला-स्थली मानमंदिर, गह्वरवन, बरसाना में स्थित माताजी गौशाला में दिखाई दिया, जहाँ उत्तर प्रदेश की सबसे बड़ी गौशाला है, यह हमारे प्रदेश के लिए ही नहीं अपितु सारे राष्ट्र का गौरव है । उन्होंने गौशाला में गौ-पूजन भी किया । इस अवसर पर गीता मनीषी श्रद्धेय श्री ज्ञानानन्द जी महाराज, वल्लभकुल भूषण श्री पंकज बाबा जी महाराज भी उपस्थित थे । ब्रज के विरक्त संत पूज्य श्री रमेश बाबा जी ही माता जी गौशाला के संस्थापक हैं । मुख्यमंत्री श्री योगी जी के गौशाला आगमन पर गोकुल के वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य पंकज बाबा, धार्मिक कार्यों के मंत्री चौधरी लक्ष्मीनारायण, ऊर्जा मंत्री श्रीकान्त शर्मा, गोकुल के विधायक श्री पूरन प्रकाश जी एवं गोवर्धन क्षेत्र से विधायक श्री कारिन्दा सिंह, उ.प्र.की पर्यटन मंत्री रीता बहुगुणा, प्रभारी मंत्री भूपेंद्र सिंह चौधरी, विधायक ठाकुर जयवीर सिंह, दीनदयाल धाम के निदेशक श्री राजेन्द्र सिंह, अम्बिका प्रसाद जी, RSS प्रचारक ललित जी केशव धाम, धर्मेन्द्र जी विभाग प्रचारक आदि भी उपस्थित थे । इन सभी ने योगी श्री आदित्यनाथ जी एवं श्री खट्टर जी के साथ यमुना जी की निर्मलता व अविरलता को लेकर व्यापक चर्चा किया । दोनों मुख्य मंत्रियों ने आश्वस्त किया कि हम यमुना जी को लेकर गंभीर हैं और बहुत शीघ्र इसका परिणाम दिखाई देगा । श्रीयोगी जी ने गोवंश के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए भी हर संभव सहायता करने का भरोसा दिलाया ।

मानमंदिर कला अकादमी द्वारा नाटिका 'संत रैदास जी' का मंचन

२३ फरवरी २०१८ को मानमंदिर के रसमण्डप भवन में मानमंदिर कला अकादमी द्वारा नाटिका 'संत रैदास जी' का मंचन किया गया । इस नाटिका के निर्देशक थे श्री दिलीप मेहरा जी । इस नाटिका में मान मंदिर के संत एवं साध्वियों ने अभिनय किया । मानमंदिर कला अकादमी की स्थापना श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी महाराज द्वारा की गई है । इस कला अकादमी के द्वारा श्री बाबा महाराज की प्रेरणा से प्रति वर्ष राधाष्टमी एवं बरसाने की रंगीली होली के उपलक्ष्य में भक्त चरित्र पर आधारित नाटिका का प्रस्तुतिकरण किया जाता है । रंगीली होली पर आयोजित नाटिका 'संत रैदास' का यह प्रथम भाग था । इस चरित्र के दूसरे भाग का आयोजन राधाष्टमी के एक दिन पूर्व किया जाएगा । इस नाटिका का लाभ आप इंटरनेट पर यूट्यूब से मानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के माध्यम से उठा सकते हैं ।

गोपियों जैसा त्याग संसार में कहीं नहीं है। मनुष्य कहीं जाकर धन तो चढ़ा देगा लेकिन धन की आसक्ति को नहीं चढ़ा सकेगा। घर तो छोड़ देगा लेकिन घर में जो आसक्ति है उसे नहीं छोड़ पाता है |